26/7/05

शिक्षा प्रशासन

विद्यालय प्रशासन का ~~समन्वय~~ सिद्धान्त

1. प्रयासों का समन्वय :

विद्यालय के संगठन इस प्रकार किया जाये की उसके समस्त मानवीय तत्व समन्वित रूप से संगठित होकर कार्य करसके। यदि मानवीय तत्वों में समन्वय नहीं होगा और वे अलग अलग व्यक्तिगत रूप से कार्य करेंगे तो विद्यालय अपने उद्देश्यों की प्राप्ती नहीं कर सकेगा। अतः विद्यालय के मानवीय तत्वों को संगठित किया जाये।

2. भौतिक तत्वों का उचित उपयोग

विद्यालय प्रशासन में दूसरी बात यह है की विद्यालय के समस्त भौतिक तत्वों को उचित प्रकार से उपयोग होरहा है या नही। भौतिक तत्वों से हमारा तात्पर्य विद्यालय का फरणीचर, भवन, खेल का मैदान आदि से है। इन सब तत्वों का उपयोग इस ढंग से किया जाये की छात्र इनसे अधिक से अधिक लाभ उठा सकें।

3. सहयोग तथा सहकारिता।

विद्यालय प्रशासन में सहयोग पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। विद्यालय में प्रशासन की नींव सहयोग के आधार पर ही डाली जाये। प्रधान अध्यापक, अध्यापक छात्र तथा उनके अभिभावकों के सहयोग से विद्यालय का प्रबन्ध चलना चाहिए। इससे शब्दों में प्रबन्ध का तात्पर्य सहयोगी जीवन से लगाया जाये।

4. सामूहिक उत्तरदायित्व

विद्यालय प्रशासन में प्रजातांत्मक भावना लाने के लिए विद्यालय प्रबन्ध में समाज के समस्त सदस्यों को सहयोग प्रदान करने का अवसर दिया जाये। दूसरे शब्दों में विद्यालय प्रशासन में सामूहिक जिम्मेदारी है सामूहिक जिम्मेदारी का तात्पर्य अध्यापक, अभिभावक, राज्य तीनों मिलकर प्रबन्ध में योग दें तथा इसका उत्तरदायित्व ग्रहण करें

5. मानवीय आधार

सबसे प्रमुख बात में रखने की यह है की विद्यालय को एक निर्जीव केन्द्र यन्त्र न माना जाये। इसमें यह ध्यान रखना है कि अध्यापक और छात्र दोनों चेतनायुक्त

क्रियाशील प्राणी है। उनके साथ मानवीय व्यवहार किया जाये। जड़ पदार्थों जैसा व्यवहार करना पूर्णतया अनुचित है। अध्यापकों को कार्य प्रदान करते समय उनकी शारीरिक और मानसिक क्षमता का भी ध्यान रखा जाय।

6. विचार विनिमय का आधार

प्रबन्ध में विचार विनिमय द्वारा गलतियों को दूर करने का प्रयास किया जाये। ऐसे अवसर प्रदान करना तब आवश्यक है जब छात्र, अध्यापक तथा प्रधान अध्यापक परस्पर विचार विनिमय द्वारा कमियों को समझने का प्रयास करें तथा सहयोग पूर्ण ढंग से इसके दोषों को दूर करें।

7. स्पष्टता तथा सुव्यवस्था

विद्यालय प्रशासन का आयोजन स्पष्ट तथा सुनिश्चित ढंग से किया जाये। अस्पष्टता और अनिश्चितता सबसे बड़ा दोष है।

(Flexibility)
8. लचीलापन, अनुकूलता और स्थिरता

विद्यालय के प्रशासन अधिक जटिल न बना जाये। यथा सम्भव इसमें गतिशीलता लायी जाये। उसमें पर्याप्त मात्रा में लचीला-पन हो तथा समाज की आवश्यकताओं के

अनुसार परिवर्तन भी किये जाये। केवल परम्परागत रूढ़ियों पर चलना प्रबन्ध को जड़ और जड़ बनाना है।

9. प्रत्येक बात का ध्यान रखा जाये.

कुशल प्रबंधकों प्रत्येक बात का ध्यान रखकर विद्यालयों के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। प्रबंध में छोटी-छोटी बातों की उपेक्षा करना अनुचित है।

10. प्रबंध को केवल साधन माना जाये

विद्यालय प्रशासन को शिक्षा के उद्देश्य प्राप्ति का साधन मात्र माना जाये न की साध्य। शिक्षा में प्रशासन को सबसे ऊपर रखने के बजाय हमें उसे साधन मात्र मानकर बनाकर एक सेवक के रूप में उससे शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करते हैं।

11. स्वशासन का अवसर

आज के प्रजातंत्रात्मक युग में प्रशासन का स्वरूप भी जनतंत्रात्मक होना चाहिए। स्वशासन की व्यवस्था करने से छात्रों में आत्म निर्भरता की भावना का विकास होता है तथा नेतृत्व की शक्ति विकसित होती है। वे परस्पर मिलकर काम करना सीखते हैं।

12. स्वास्थ्य तथा चरित्र का निर्माण

विद्यालय प्रशासन के अन्य सिद्धान्तों के साथ साथ (स्वास्थ्य तथा चरित्र निर्माण का सिद्धान्त भी विशेष महत्व का सिद्धान्त है। विद्यालय में खेल कूद, व्यायाम, डाक्टरी निरीक्षण आदि का पूर्ण प्रबंध हो)

13. अभिभावकों से सहयोग लिया जाये

विद्यालय प्रशासन में अभिभावकों का सहयोग अवश्य लिया जाये (अभिभावक सहयोग का सबसे बड़ा लाभ यह है की बालक के विषय में अध्यापक को पूरी पूरी जानकारी हो सकेगी) दूसरे विद्यालय समाज के निकट आ-सकेगा।

14. ~~विद्यालय~~

14. रचनात्मक दृष्टिकोण

(विद्यालय प्रशासन के सिद्धान्त केवल कागज के नहीं वरन् पूर्णतया व्यावहारिक हो सिद्धान्तों का निर्माण इस ढंग से किया जाये की कार्य रूप में परिणित भी सफलता से किया जा सके।

28/7/05 शैक्षिक प्रशासन का कार्य

1. निर्णय :- (Decision)

शिक्षा संबंधी क्रिया कला को का गति विधियों के संचालन में शैक्षिक प्रशासन को बहुत से निर्णय लेने पड़ते हैं। प्रत्येक निर्णय को महत्वपूर्ण समझना चाहिए। कई प्रशासक पिछले निर्णयों के आधार पर ही निर्णय लेते रहते हैं। ऐसा करना सदैव उपयुक्त नहीं होता। अतः निर्णय करते समय समस्या से संबंधित तथ्यों आँकड़ो और सूचनाओं के सही आकलन व विश्लेषण तथा संस्था और शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सही विकल्प के पक्ष में निर्णय लेना चाहिए।

2. नियोजन : (planning)

संस्था विशेष आवश्यकताओं आदर्शों तथा उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर उद्देश्यों की प्राप्ती के लिए व्यवहारिक योजना तैयार की जानी चाहिए। भविष्य की कार्य प्रणाली निश्चित करते समय वर्तमान के निरीक्षणों तथा भूतकाल के अनुभवों का समुचित एवं विवेक समस्त प्रयोग करना चाहिए।

3. संगठन :- (organisation)

संगठन एक कला है शिक्षा के क्षेत्र में संगठन का क्षेत्र भौतिक एवं मानवीय दोनों

प्रकार के संसाधनों से संबंधित होता है। (अतः भवन, फरनीचर, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, व शैक्षिक सामग्री के विकास एवं रखरखाव के अतिरिक्त कक्षाओं, शिक्षक समितियाँ, समय सारणी परीक्षा, खेल कूद आदि की व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण विधियों आदि से संबंधित विचारों को भी उचित रूप में अपनाया जाता है! अतः (इन सभी सभी बातों का संगठन कुशलता पूर्वक किया जाना चाहिए।)

4. संप्रेषण :

(संप्रेषण संगठन का साधन है जिसमें (आदेश, सूचनाएं, विचार, प्रश्न एवं समस्याएं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को पहुँचायी जाती है) यह तीन प्रकार से ~~संबंध~~ संभव होता है!

1) ऊपर से नीचे की ओर :- अर्थात (दायित्व एवं पदों के क्रम में, आदेश या सूचनाएं, अनुपालन हेतु प्रसारित किये जाते हैं)।

2) समानान्तर :- (जिसमें शिक्षक - शिक्षक, शिक्षार्थी - शिक्षार्थी, कर्मचारी कर्मचारी, परस्पर विचार करते हैं और अपनी आवश्यकताओं, माँगों, या सूचनाओं को संबंधित व्यक्तियों तक पहुँचाते हैं)।

3) नीचे से ऊपर :- (निम्न कर्मचारियों, सहायकों या कर्मचारियों द्वारा संदेश मत या विचार प्रधान अध्यापक या अन्य उच्च अधिकारियों तक पहुँचाती जाती है) विशेष ध्यान यह है की सम्प्रेषण में कहीं रुकावट नहीं आनी चाहिए। और सम्बंधित बातों पर उचित ध्यान देकर कार्यवाही की जानी चाहिए।

29/7/05

5. निर्देशन :-

(शैक्षिक प्रशासन में इस बात को महत्त्व देता है की स्पष्ट निर्देश दिये जाये, जैसे की कार्य, किस प्रकार किया जाना है, कौन क्या करेगा तथा कार्य कब प्रारंभ होकर कब समाप्त होगा। योजना की सफलता उचित निर्देशन पर निर्भर करती है)। इसकेलिए प्रशासकों में उच्च स्तर की योग्यता दूर दृष्टि, अनुभव, विवेक शक्ति, एवं नेतृत्व शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है।

6. समन्वय !

(शैक्षिक प्रशासन का प्रमुख दायित्व भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का सार्थक, न्यायोजित एवं मितव्ययता पूर्ण उपयोग करके श्रम और शक्ति का सदुपयोग करना भी है।) अतः आवश्यक है शैक्षिक प्रशासन भौतिक एवं मानवीय साधनों के मध्य आश्रितता वह एवं विभिन्न व्यक्तियों के बीच आंतर संबंधों की पूर्ण जानकारी

करके एक कुशल प्रबंधक के बाँधी समन्वय स्थापित करें जिससे की शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ती होसके।

7. रिपोर्ट तैयार करना :-

(शैक्षिक प्रशासन में रिपोर्ट तैयार करना इसलिए आवश्यक है की प्रगति का मूल्यांकन किया जासके। और भविष्य में सुधार की योजना तैयार की जासके। अतः शैक्षिक प्रशासक को सम्पूर्ण कार्य का अवलोकन एवं सही आकलन करके रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।)

8. बजट बनाना :-

(शैक्षिक आवश्यकताओं की सूची बनाकर, आवश्यकता पूर्ति का कार्यक्रम तैयार करना और वित्तीय पदों में अनुवादित करने की क्रीया बजट निर्माण कहलाता है) शैक्षिक प्रशासनों को बजट निर्माण में दक्ष होना चाहिए।

9. मूल्यांकन :-

मूल्यांकन शैक्षिक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण तत्व है। मूल्यांकन द्वारा इस बात का पता चलता है की उद्देश्यों की प्राप्ती किस सीमा तक हुई है। यदि कमी होरही है तो उसके कारण क्या है) तथा अभीष्ट सफलता

केलिए उद्देश्यों में परिवर्तन अथवा प्रयासों में बदलाव तो आवश्यक है या नहीं ! प्रशासन एक प्रगतिशील प्रक्रिया है इसे सही दिशा प्रदान करने केलिए सही मूल्यांकन होते रहना आवश्यक है !

1/8/05

केन्द्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन :

केन्द्र में 26 सितम्बर 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय का घटन किया गया ! इस मंत्रालय पर पाँच विभाग हैं !

1. शिक्षा विभाग
2. संस्कृति विभाग
3. कला विभाग
4. डिपार्टमेन्ट ओफ यूथ अफेयर्स आंड स्पोर्ट्स
5. डिपार्टमेन्ट ओफ विमेन्स आंड चाइल्ड केयर

शिक्षा विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय का महत्व पूर्ण अंक है ! इस विभाग का अध्यक्ष एक राज्यमंत्री होता है, जो मंत्रालय के अ मन अधीन कार्य करता है ! विभाग के सचिवालय की अध्यक्षता शिक्षा सचिव करता है ! सचिव की सहायता के लिए

विशेष सचीव (उच्च शिक्षा), अतरिक्त सचीव एंव शिक्षा परामर्श दाता (Technical) होते हैं। शिक्षा विभाग को विभिन्न सेक्शनो, डिविज़नो, वा ब्यूरों में विभक्त किया है। जिनको अध्यक्षता संयुक्त सचीव के स्तर का अधिकारी करता है। संयुक्त सचीव संयुक्त शिक्षा परामर्श दाता की सहायता के लिए डिविज़नल अध्यक्ष होते हैं। शिक्षा परामर्श दाता मंत्रालय का प्रशासकीय अध्यक्ष होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह शिक्षा आयोगों के नियुक्ति करके तथा विभिन्न प्रयोगों के आधार पर राज्य सरकारों को आवश्यक परामर्श देती है वह मार्ग दर्शन करती है। शिक्षा के विकास हेतु योजनाएं बनाना और उन्हें क्रियान्वित करना केन्द्र के प्रमुख कार्य हैं। केन्द्र सरकार दस केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का संचालन करती है राष्ट्रीय महत्त्व के सभी संस्थाओं के प्रशासन केन्द्र सरकार के अधीन हैं। केन्द्र सरकार के अन्य महत्वपूर्ण कार्य हैं - संघीय क्षेत्र में शिक्षा की व्यवस्था करना, अन्य देशों से शैक्षिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करना और UNESCO

जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहयोग करना, उच्च शिक्षा, अनुसंधान, वैज्ञानिक या प्राविधिक शिक्षा के मानदण्डों का निर्धारण, संस्थाओं को अनुदान देना तथा केन्द्र वा राज्य के कार्यों के मध्य समन्वय स्थापित करना है!

~~अखिल भारतीय~~

X. अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् :-

(शिक्षा मंत्रालय ने अपने शैक्षिक दायित्व या कार्यों की पूर्ति के लिए बहुत सी शिक्षा परिषदों तथा बोर्डों की स्थापना कर रही है)

1. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड
2. अखिल भारतीय प्रारंभिक शिक्षा परिषद्
3. अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्
4. विश्व विद्यालय अनुदान आयोग
5. अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद्
6. राष्ट्रीय ग्रामीण उच्च शिक्षा परिषद्
7. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
8. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड
9. वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्
10. राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान

राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन :-

राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष राज्यपाल होता है। राज्यपाल को प्रशासन कार्यों में प्रशासन के लिए में मंत्रीपरिषद होती है। शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ एवं प्रशासन का दायित्व शिक्षा मंत्री का होता है। विशेष विषयों की शिक्षा का दायित्व सम्बन्धित विभाग का मंत्री निभाता है। जैसे कृषि शिक्षा के लिए कृषिमंत्री उत्तरदायी होता है। शिक्षा मंत्री की सहायता के लिए कुछ प्रदेशों में एक या दो उपमंत्री होते हैं। राज्यों में शिक्षा का प्रशासनिक अध्यक्ष शिक्षा निदेशक या सार्वजनिक शिक्षा निदेशक होता है। कई प्रदेशों में प्राथमिक, माध्यमिक, वा उच्च शिक्षा के लिए अलग अलग शिक्षा निदेशक होते हैं। शिक्षा मंत्री की सहायता के लिए शिक्षा सचिव होता है। शिक्षा सचीवालय, शिक्षा निदेशालय तथा विधान मण्डल के मध्य कड़ी का कार्य करता है। राज्यों में सरकार को परामर्श देने के लिए राज्य शिक्षा सलाहकार बोर्ड की व्यवस्था है।

राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढांचा इस प्रकार होता है।

1 ✓ अधिकारी ↓	स्तर ↓
2 ✓ शिक्षा मंत्री ↓	✓ राज्य का शिक्षा मंत्रालय ↓
3 ✓ शिक्षा सचिव ↓	✓ शिक्षा सचिवालय ↓
4 ✓ शिक्षा निदेशक या सार्वजनिक शिक्षा निदेशक ↓	✓ शिक्षा निदेशालय ↓
5 ✓ उपशिक्षा निदेशक या सरकल शिक्षा अधिकारी ↓	✓ क्षेत्रिय या सरकल कार्यालय ↓
6 ✓ जिला शिक्षा अधिकारी या जिला विद्यालय निरीक्षक (प्राथमिक शिक्षा के लिए बेसिक शिक्षा अधिकारी) ↓	✓ जिला स्तर ↓
7 ✓ ब्लोक शिक्षा अधिकारी ↓	✓ ब्लोक स्तर
8 ✓ डेप्युटी इनस्पेक्टर	

2/8/05

स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद से शिक्षा के विकेन्द्रीयकरण की संकल्पना महत्त्वपूर्ण हुई हैं। तथा कुछ राज्यों में पंचायत राज को क्रियान्वित किया गया हैं। जो प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था का प्रशासन चलाते हैं।

स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक ढाँचा

स्थानीय संस्थाएं

जिला परिषद् या जिला बोर्ड
↓
जनपदीय शिक्षक परिषद् शिक्षा समिति
↓
ब्लॉक पंचायत समिति
↓
ग्राम पंचायत

नगरपालिकायें

- अधिकृत नगर पालिकायें
  ↓
  अध्यक्ष नगर पालिका
  ↓
  शिक्षा समिति
  - शिक्षा अधीक्षक
    ↓
    उपस्थिति अधिकारी (पुरुष)
  - शिक्षा अधीक्षिका
    ↓
    उपस्थिति अधिकारी (महिला)
- अनधिकृत नगर पालिकायें
  ↓
  अध्यक्ष नगर पालिका

3/8/05

विद्यालय संगठन के अर्थ (विद्यालय प्रबंध)

संगठन प्रशासन के एक अंग है। संगठन के द्वारा किसी संस्था के लक्ष्य प्राप्त करने के प्रयास किये जाते हैं। बिना लक्ष्य के संगठन का कोई अस्तित्व नहीं होता।

विद्यालय संगठन के अन्तर्गत भौतिक एवं मानवीय तत्वों के आपस की प्रणाली के लिए

उपलब्ध तथा सुव्यवस्थित किया जाता है! यदि एक विद्यालय की स्थापना करनी है तो उसके लिए स्थान, वातावरण, जल, भवन, फरनीचर, शैक्षिक साज-सज्जा, शिक्षक, कर्मचारियों आदि का प्रबन्ध करना होगा तथा अभीष्ट साध्य की प्राप्ती केलिए इन तत्वों को व्यवस्थित करना होगा।

(विद्यालय संगठन वह संरचना है जिसमे शिक्षक, छात्र, प्रधान अध्यापक, परिनिरीक्षक, तथा अन्य व्यक्ति विद्यालय की क्रीयाओं को चलाने केलिए मिलकर कार्य करते है! अर्थात शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ती केलिए समस्त उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय तत्वों की समुचित व्यवस्था करना विद्यालय का संगठन कहलाता है)!

संगठन के अन्तर्गत केवल व्यवस्था ही नहीं वरन विभिन्न विद्यालयीन तत्वों में सामंजस्य या समन्वय स्थापित करना भी अनिवार्य है। सभी आवश्यक तत्वों का प्रबन्ध करके उनमें इस प्रकार समन्वय ~~किया~~ स्थापित किया जाना चाहिए जिससे निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ती केलिए प्रत्येक तत्वों का अधिकतम उपयोग कम विघ्न एवं बाधा के अभाव में किया जासके!

संगठन के अर्थ को समजने से स्पष्ट होजाता है कि संगठन का ही लक्ष्य न

बनाया जाये। विद्यालय संगठन को एक ऐसे साधन के रूप में ग्रहण करना चाहिए की अभीष्ट शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ती हो सके। संगठन वो यंत्र है जिसको विधीवद्द संचालित करके लक्ष्य की प्राप्ती की जा सकती है। इसको स्वयं में साध्य बनने की अनुमती नहीं दी जानी चाहिए। वरन इसको सदैव इस लक्ष्य के अधीन रखा जाना चाहिए जिसकी प्राप्ती के लिए नियोजन कीया जा रहा है।

विद्यालय संगठन की परिभाषा

ग्रेज :-

ग्रेज के अनुसार "किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ती की दिशा में किसी समूह की समन्वित क्रीयाओं का आशय ही संगठन है।"

बर्नार्ड :-

बर्नार्ड के अनुसार "दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा सुचिन्तित प्रवृत्तियों के समन्वय की प्रणाली को भी संगठन कहते हैं।"

संगठन एक व्यक्तिगत प्रणाली है जिसमें मानव के किसी छोटे या बड़े समूह के समन्वित प्रयत्न कार्य करते हैं। समन्वय के

अपने कुछ नियम होते हैं जिसमें रहकर भी संगठन कार्य करता है।

बनार्ड के अनुसार संगठन में नीचे लिखे चार विशेषताएँ होती हैं।

1. संगठन के सुनिश्चित लक्ष्य होते हैं।
2. लक्ष्य प्राप्ती हेतु सम्बंधित व्यक्ति मिलकर कार्य करते हैं।
3. व्यक्तियों के मध्य, स्थिति अनुसार सम्बन्ध होता है।
4. समस्त क्रियाओं का साधनों में समन्वय होता है।

5/8/05 विद्यालय संगठन के उद्देश्य

विद्यालय की स्थापना का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगिन विकास करना है। इसलिए विद्यालय संगठन का उद्देश्य भी इस लक्ष्य की प्राप्ती हेतु सक्रीयय योग प्रधान करना होना चाहिए। विद्यालय संगठन का उद्देश्य बालकों को ऐसे अवसर प्रधान करना है जिनमे उनकी समस्त जनम जात शक्तियों का सामंजस्य पूर्ण विकास सम्भव होसके। इसके अतिरिक्त उनकी मूल प्रवृत्तियों ~~का~~ का उपयोग एवं शोधन तथा रुचियों का स्वस्त प्रकाशन एवं परिष्करण से, परिष्करण होसके। बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का संतुलित विकास करने की दृष्टि से विद्यालय संगठन का उद्देश्य उसके शारीरिक, मानसिक,

चारित्रिक एवं सामाजिक गुणों का विकास करते हुए उसे इस योग्य बनाना है की वह भावी जीवन में अपनी दायित्वों का निर्वाह सफलता एवं सचाई के साथ कर सके। अतः स्पष्ट है की विद्यालय का संगठन बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती हेतु विद्यालय की स्थापना करता है। इस प्रकार विद्यालय संगठन का उद्देश्य बालकों को इस प्रकार शिक्षित करना है की वे समाज की आदर्शों मान्यताओं, विश्वासों एवं मूल्यों की रक्षा कर सके। विद्यालय समाज का लघुरूप है विद्यालय का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए की वो सामाजिक विकास का ऐसा केन्द्र बन सके जहाँ बालक को सामाजिक जीवन का वास्तविक एवं उपयोगी प्रशिक्षण मिल सके।

विद्यालय संगठन का उद्देश्य सामाजिक आवश्यकताओं के संदर्भ में बालकों का समन्वित बहुपक्षीय विकास होना चाहिए जिससे वह स्वयं अपने जाती समाज राष्ट्र और मानव जाती के लिए वरदान सिद्ध हो सके।

9/8/05 विद्यालय संगठन के सिद्धान्त

अनेक विद्वानों ने विद्यालय संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है।

1. बाल केन्द्रित

विद्यालय का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। यह संगठन ऐसा हो जिसके द्वारा बालकों की विभिन्न योग्यताओं, अभिरुचियों, संवेगों, एवं मूल प्रवृत्तियों को स्वस्थ दिशाओं में विकसित किया गया है! संगठन द्वारा विद्यालयों में ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए जिसमे बालक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं चारित्रिक कुशलताओं को सरलता से प्राप्त कर सके। विद्यालय की विभिन्न क्रियाएं तथा उनके वैयक्तिक विभिन्नताओं उनके पूर्व अनुभवों तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को दृष्टिगत रखने से तो प्रत्येक बालक को अपना सर्वोत्तम विकास करने के लिए उपयुक्त सुविधाएं प्राप्त हो सके।

2. समाज केन्द्रित

संगठन बालकेन्द्रित होने के साथ साथ समाज केन्द्रित होना चाहिए। क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य बालकों को समाज का एक सक्रीय, उपयोगी एवं कुशल सदस्य बनाना है। संगठन में समाज की प्रगती हेतु उचित व्यवस्था का होना भी परम आवश्यक है। अतः विद्यालय संगठन बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भी समाज के आदर्शों, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं मूल्यों, संस्कृती आदि पर आधारित होना चाहिए।
उदा :- भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिए अनाज के अधिक उत्पादन केलिए कृषि को वैज्ञानिक तथा तकनीकी आधार देना आवश्यक होगया है। इसके कारण विद्यालय में आधुनिक विधी के शिक्षण पर बल दिया जारहा है। आधुनिक मत के अनुसार शिक्षा को व्यवसाय या पेशा केन्द्रित पर बल दिया जारहा है। जिससे शिक्षित बेरोजगारी को समाप्त किया जासके।

3. लोकतंत्रीय सिद्धान्त

आज के बालक कल के नागरिक हैं। लोकतंत्र की सफलता हमारे विद्यालयों पर ही

निर्भर है। यह विद्यालय ही जो जनतंत्र के स्तंभ ~~स्तम्भ~~ अर्थात भावी नागरिकों का निर्माण करते हैं। बालकों में आदर्श नागरिकों के गुणों का विकास विद्यालय की व्यवस्था ~~परम्पराओं~~ कला एवं परम्पराओं के माध्यम से किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालय का संगठन लोकतंत्रीय सिद्धान्तों एवं प्रक्रियाओं के अनुसार हो।

4. उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपयोग का सिद्धान्त

संगठन द्वारा विभिन्न मानवीय एवं भौतिक तत्वों में अधिक से अधिक सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए। जिससे इनका सर्वोत्तम उपयोग करके शक्ति, समय एवं धन का अधिकतम ~~सदुपयोग~~ सदुपयोग हो सके। शिक्षकों की नियुक्ति तथा विद्यालय में प्रयुक्त होने वाले समस्त सामग्री - शिक्षण विधियाँ, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ, पाठ्य पुस्तकें, अन्य साज सज्जा, बालक तथा समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित कि जायें अन्यथा उसका ~~अधिकांश~~ अपव्यय होगा तथा संगठन से पूर्ण लाभ ~~का~~ प्राप्त नहीं हो पायेगा।

5. लोच का सिद्धान्त

मानव, प्राणी एवं समाज तथा उनकी आवश्यकतायें परिवर्तन शील है ! जब विद्यालय का लक्ष्य बालक एवं समाज का उचित दिशाओं में विकास करना है तो इनकी बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुकूल विद्यालय संगठन में समय समय पर परिवर्तन होना नितांत आवश्यक है ! अतः विद्यालय संगठन लोच अथवा परिवर्तन शीलता का गुण होना चाहिए।

संगठन एवं प्रशासन में भेद

साधारणतया लोग संगठन तथा प्रशासन का एक ही अर्थ लगाते हैं लेकिन यह ठीक नहीं है। संगठन एक विशेष उद्देश्य की प्राप्ती केलिए साधन रूपी ढाँचा अथवा संरचना है और विद्यालय की प्रशासकीय पक्ष में मुख्यतः उनका संचालन एवं परिचालन निहित है ! उत्तम संगठन अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ती के लिए संभावना ही उत्पन्न करता है परन्तु प्रशासन द्वारा उनकी प्राप्ती का क्रमिक रूप से प्रयास किया जाता है। जैसे जिस समय आवश्यकता होती है उसीके अनुसार संगठन में परिवर्तन करके उद्देश्य की प्राप्ती केलिए प्रशासनिक कार्य किया जाता है ! इसी

कारण यह कहा जाता है की विद्यालय के प्रधान को एक एक उत्तम प्रशासक होने के साथ साथ उत्तम संगठन कर्ता होना चाहिए क्योंकि त्रुटिपूर्ण संगठन से उत्तम प्रशासक के प्रयास भी निरर्थक हो जायेंगे।

17/8/05

संगठन की अपेक्षा प्रशासन का कार्य क्षेत्र अधिक व्यापक है। विद्यालय प्रशासक वस्तुतः संगठनात्मक एवं प्रशासकीय दोनों ही पक्षों के लिए उत्तरदायी है। विद्यालय संगठन एक संरचना है जिसको निर्मित एवं संचालित करना प्रशासक का महत्वपूर्ण कर्तव्य है। अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान ग्यूलिक के अध्ययन के परिणामों के आधार पर एक प्रशासक के प्रमुख कार्य- विद्यालय व्यवस्था का नियोजन, संगठन, समन्वय एवं संचालन माने गये है। अतः उसे प्रशासकीय कार्यों के साथ साथ संगठनात्मक कार्य जैसे शिक्षकों की नियुक्ति, विद्यालय के लिए आवश्यक साज सज्जा एवं धन का प्रबन्ध आदि भी करने होते है। प्रशासक की कुशलता इसमें है की वो विद्यालय में भौतिक एवं मानवीय तत्वों का समन्वय एवं संचालन इस प्रकार से करेगा अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति सरलता

से हो सके। उपरित विवेचन से स्पष्ट है की संगठन एवं प्रशासन घनिष्ट रूप से सम्बंधित ही नहीं वरन अन्योन्याश्रित है।

प्रशासन	संगठन
1) प्रशासन प्रबंध का गतिशील तथा क्रियात्मक पक्ष होता है।	1) संगठन प्रबंध प्रारूप मात्र होता है। स्वयं क्रियाशील नहीं होता है।
2) प्रशासन द्वारा अपेक्षित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ती का साधन प्रशासन होता है।	2) संगठन का प्रारूप उद्देश्यों की दृष्टि से विकसित किया जाता है। संगठन वह व्यवस्था है जिसके द्वारा कोई संस्था अपना लक्ष्य प्राप्त करती है।
3) प्रशासन एक कार्य प्रणाली है जिसमे व्यक्तियों एवं सामग्री को प्रयुक्त किया जाता है।	3) संगठन एक प्रारूप होता है उसी की दृष्टि से कार्य सम्बंधित किये जाते हैं।
4) प्रशासन के अतंर्गत जिन साधनों एवं व्यक्तियों को लगाया जाता है, उनका मुल्यांकन भी किया जाता है।	4) संगठन में साधनों एवं व्यक्तियों की भूमिका निर्धारित की जाती है।
5) प्रशासन एक प्रणाली है जो प्रबंध तथा संगठन के प्रारूप की	5) संगठन के अतंर्गत क्रियाओं, उपकरणों तथा व्यक्तियों के कार्यों एवं उपयोग का स्वरूप सुनिश्चित किया जाता

क्रियान्वित करते हैं तथा निर्देशित एवं नियंत्रित करती है।	
6) प्रशासन की प्रकृति व्यावहारिक अधिक होती है। संगठन के प्रारूप का क्रियान्वय, परिवेषण तथा मूल्यांकन करना है।	6) संगठन का प्रारूप तार्किक तथा सैद्धांतिक होता है। नियोजन की क्रिया प्रमुख होती है। प्रशासन से पहले की अवस्था है।

विद्यालय संगठन के अंतर्गत निम्न लिखित विषय आ सकते हैं।

1. भौतिक साधन प्रस्तुत करना, जैसे पुस्तकालय, मकान, प्रयोगशाला तथा उनसे सम्बंधित वस्तुएं।
2. मानवीय साधन प्रस्तुत करना जैसे प्रधान-अध्यापक, अध्यापक, कर्मचारियों आदि।
3. विभिन्न श्रेणियों के लिए शिक्षाक्रम तैयार करना,
4. पाठ्यक्रम तैयार करना।
5. शिक्षण सम्बंधी कार्य एवं अन्य गतिविधियाँ।
6. बालकों का वर्गीकरण तथा उपस्थिति।
7. पुस्तकालय का संगठन।
8. शारीरिक शिक्षा का संगठन।

9 छात्रावास का प्रबंध और उसका संगठन ।

10. पाठ्यक्रमियों का प्रबंध ।

11. अनुशासन रखना और पुरस्कार तथा दण्ड देना ।

12. स्कूल का लेखा - जोखा तैयार करना ।

13. स्कूल के कार्यों का निरिक्षण ।

14. शिक्षा सम्बंधी कार्य की योजना ।

15. आर्थिक व्यवस्था तथा बजट तैयार करना ।

16. परिक्षाओं का प्रबन्ध करना तथा छात्रों की उन्नती का मूल्यांकन करना ।

17. स्कूल तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्ध को बढ़ाना ।

18. शिक्षा सम्बंधी उच्च अधिकारियों के आदेशों को लागू करना ।

18/8/05

प्रधान अध्यापक के महत्व।

प्रधान अध्यापक विद्यालय के प्रधान व्यक्ति है। विद्यालय के सौर्य मण्डल में प्रधान अध्यापक वैसा सूर्य है जिसमे चारों ओर सभी अध्यापक ग्रहों की भाँति चक्कर लगाते है। प्रधानाध्यापक कि तुलना किसी भी राज्य के मुख्य व्यक्ति से होते है। छात्र सेना की भाँति है और अध्यापक वर्ग अधिकारियों समूह है, और विद्यालय क्षेत्र उसकी राजधानी है। एक अंग्रेजी लेखक रायबर्न इससे अधिक सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग करते हुए कहा है की प्रधान अध्यापक किसी जहाज के कप्तान की तरफ विद्यालय में अपना मुख्य स्थान रखता है। रास के शब्दों मे "विद्यालय प्रशासन के कार्य को दो प्रमुख भागों प्रशासनिक कार्य तथा नीति निर्धारण मे बाँटा जा सकता है। प्रथम प्रकार का कार्य केवल दुकानदारी है और दूसरा शैक्षिक नीति से सम्बन्धित है"।

विद्यालय संगठन के लिए दो

प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता है।
1. मानवीय साधन
2. भौतिक साधन

शिक्षण के क्षेत्र में प्रधानाध्यापक एक नेता है। प्रधान अध्यापक विद्यालय का ही नेता नहीं है, समाज का भी नेता है। शिक्षण के क्षेत्र में प्रधान अध्यापक, छात्र-छात्र, शिक्षक-छात्र, शिक्षक-शिक्षक, शिक्षक-निरीक्षक, शिक्षक-अभिभावक आदि के सम्बन्धों को संकलित एवं सुरक्षित करना पड़ता है। यह समस्त सम्बन्धों पर उनके व्यक्तित्वों की अमिट छाप पड़ती है। शिक्षा सम्बंधि ज्ञान के ऊपर भी सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नती एवं सफलता निर्भर है। यदि वह प्रचलित शिक्षा सम्बंधि विचारों, प्रयोगों, एवं सिद्धान्तों से स्वयं को अवगत नहीं कराता है, अथवा उसे उनके व्यवहारिक ज्ञान नहीं है तो वो अपने शिक्षको या साथियों के शिक्षण के क्षेत्र में नेतृत्व नहीं कर सकता। इन प्रयोगों एवं सिद्धान्तों के ज्ञान से ही वो अपने

विद्यालय में प्रदान किये जानेवाले शिक्षण उन्नत बना सकता है ! तथा उन अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ती कर सकता है जिनके लिए विद्यालय का संगठन किया गया है।

19/8/05

1. विद्यालय की प्रधान शक्ति

(प्रधानाध्यापक विद्यालय की प्रधान शक्ति है अपने व्यक्तित्वों के प्रभाव से पाठशाला के स्तर को उठा सकता है। वो समस्त अध्यापक मण्डल के लिए प्रेरणा का स्रोत है। अध्यापक उससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं, तथा उनकी आज्ञा को मानते हैं ! विद्यालय की समस्त योजनाओं का निर्माण भी उसीके द्वारा किया जाता है !)

2. विद्यालय के केन्द्र बिंदु

(वो विद्यालय के केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर विद्यालय की समस्त क्रियाएं चक्कर लगाती हैं। अध्यापक तथा अन्य कर्मचारीगण उसके आदेशों पर ही कार्य करते हैं)

3. विद्यालय की प्रगति का आधार

किसी भी विद्यालय की प्रगति तथा अवनति उसके प्रधानाध्यापक के व्यक्तित्व पर निर्भर है। यदि प्रधानाध्यापक प्रभावशाली तथा उच्च चरित्रवान् होगा तो उसका प्रभाव विद्यालय के समस्त वातावरण पर पड़ेगा। अध्यापक मण्डल तथा छात्रगण सब उनसे प्रेरणा लेकर आचरण करेंगे। इसके विपरीत यदि प्रधानाध्यापक अयोग्य तथा अपने कार्य के प्रति उदासीन होगा तो उसका प्रभाव विद्यालय के लिए घातक होगा। दूसरे शब्दों में प्रधानाध्यापक के व्यक्तित्व ऊपर भी किसी विद्यालय का स्तर निर्भर करता है।

4. विद्यालय और समाज के मध्य की कड़ी

प्रधानाध्यापक का सम्बन्ध केवल विद्यालय और छात्रों से ही नहीं रहता वरन् वो समाज से भी सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में प्रधानाध्यापक समाज और विद्यालय के बीच की एक कड़ी है। उसका जितना सम्बन्ध विद्यालय से है उतना ही समाज से है। विद्यालय में वो इस प्रकार की क्रियाओं का आयोजन करता है कि जिससे समाज के सदस्य भी विद्यालय की गति

विद्यों से परिचित हो सके। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है की विद्यालय समाज का लघु रूप है। इस प्रकार उनका कार्य क्षेत्र विद्यालय के दफ्तर तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज से रहता है।

22/8/05

प्रधानाध्यापक के गुण

प्रधानाध्यापक पद के लिए विशेष प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति अनिवार्य है। वास्तव में प्रधानाध्यापक के पद पर वही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिए। जिसकी मानसिक प्रतिभा एकांकी न होकर बहुमुखी हो। प्रधानाध्यापक के गुणों का विवेचन निम्न लिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

I वैयक्तिक गुण

प्रधानाध्यापक का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए की उसका प्रभाव विद्यार्थियों पर अच्छा पड़े। इस दृष्टि के अन्तर्गत प्र. अ में अधोलिखित गुणों का होना आवश्यक है।

1 नेतृत्व की भावना

प्र. अ के अंदर नेतृत्व की भावना का होना परम आवश्यक है। वह सम्पूर्ण

पाठशाला का नेता होता है, उसके आदेश के अनुसार ही समस्त कार्य होते हैं। अध्यापक मण्डल को प्रत्येक प्रकार का आदेश देना पड़ता है तो दूसरी ओर उसे समस्त छात्र गणों को अपने नियंत्रण में रखना पड़ता है। साथ-ही उसके लिए शिक्षण की प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ती के लिए ही प्रत्यन करना आवश्यक हो जाता है। इस कारण (एक प्र. अ के लिए आवश्यक है की उसमे नेतृत्व की अवश्य इतनी योग्यता हो की वह छात्रों तथा अध्यापकों को शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ती के लिए सहयोग दे सके)

2. उत्तम स्वास्थ्य एवं स्फूर्ती

प्र. अ में स्वास्थ्य एवं स्फूर्ती का गुण होना परमावश्यक है! क्योंकि (अच्छे स्वास्थ्य का अच्छे मस्तिष्क से उच्च प्रकार का सह सम्बन्ध होता है। इसलिए प्र. अ का स्वास्थ्य ही अच्छा नहीं होना चाहिए साथ ही साथ जीवन शक्ति या स्फूर्ती भी होना चाहिए)

3. उच्च चरित्र

(प्र. अ को चरित्रवान होना आवश्यक है

यदि उसका चरित्र उच्च नहीं है तो वो अपने विद्यालय के स्तर को कभी ऊँचा नहीं उठा पायेगा! उसके चरित्र पर ही सम्पूर्ण विद्यालय का चरित्र निर्भर है प्र. अ. को स्वयं में अच्छी आदतों का निर्माण करना चाहिए इसके साथ ही उसका व्यक्तिगत जीवन भी स्वच्छ होना चाहिए उसको सदैव उच्च आदर्शों को अपने समक्ष रखना चाहिए तथा उसके अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए! चरित्रवान व्यक्ति को समाज सदा आदर की दृष्टि से देखा जाता है!

23/8/05

4. सहानुभूति पूर्ण व्यवहार

प्र. अ. को अपने अध्यापक तथा छात्रों के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार का पालन करना चाहिए. इसके अभाव में वो अपने छात्रों एवं सहयोगियों का विश्वास पात्र नहीं बन सकता! और न शिक्षक तथा छात्र उसके समक्ष अपने कठिनाईयां एवं समस्याओं को प्रस्तुत कर पायेंगे। अर्थात समय-समय पर उसे अध्यापकों की व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करने का समाधान देना चाहिए तथा छात्रों के साथ कठोर व्यवहार के बजाय कृतज्ञता व्यवहार अपनाना चाहिए

5. सहयोग की भावना

प्र. अ को सहयोग पूर्ण भावना को साथ लेकर चलना चाहिए! वास्तव में यदि प्र. अ छात्रों और अध्यापकों के सहयोग से कार्य करता है तो पाठशाला के समस्त प्रबंध बिना किसी बाधा के चलता रहेगा। प्रत्येक नवीन योजना को पाठशाला में लागू करने से पूर्व उसकेलिए आवश्यक है की वो अपने सहयोगी अध्यापकों से उचित सलाह ले!

6. ज्ञान के प्रति उत्सुकता

प्र. अ को केवल विद्यालय का नेतृत्व ही नहीं करना है, वरन उसे अपने अंदर की ज्ञान पिपासा को भी जागृत रखना है! उसकेलिए यह आवश्यक है की शिक्षा के नूतन से नूतन प्रयोगों का ज्ञान रखे! शिक्षा मनोविज्ञान की पूर्ण जानकारी उसकेलिए आवश्यक है! उसका अपना नीजि पुस्तकालय होनी चाहिए जिसमें विभिन्न विषयों की पुस्तके तथा पत्र पत्रिकाओं का समावेश हो। उसे अध्यापक मण्डल के साथ भी कभी कभी साहित्यक तथा शिक्षा सम्बंधी बातचीत में भाग लेना चाहिए!

7. कार्यशील

(विद्यालय के नेता को व्यवहारिक होना आवश्यक है। वो जिन सिद्धान्तों एवं आदर्शों को अपने छात्रों एवं सहयोगियों के समक्ष रखता है, यदि वह उसके अनुसार स्वयं कार्य नहीं करता है तो सफल नेतृत्व करने में असमर्थ रहेगा। अतः प्र. अ को सदैव अपने छात्रों एवं सहयोगियों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए)

8. प्रजनतांत्मक भाव

सहयोग की भावना से मिलता जुलता प्रमुख गुण जो प्र. अ के अंदर होना परम आवश्यक है वो है जनतंत्रीय भावना। विद्यालय संगठन में यथा सम्भव जनतंत्रीय भावनाओं को अपनाया जाये। छात्र परिषद् का आयोजन करना, अनुशासन के विषयों में, छात्रों के ऊपर कार्य भार सौंपना आदि पाठशाला के स्तर को उठाने में सहायक होंगे। (प्र. अ का कर्तव्य है कि छात्रों के व्यक्तित्व का विकास उनमें सामाजिक गुणों का विकास करना है जिससे वे भविष्य में अपने को जनतंत्र के योग्य नागरिक सिद्ध कर सके)

9. मैत्रीपूर्ण व्यवहार

प्र. अ को छात्रों तथा अध्यापकों के साथ मित्रवत् सम्बन्ध बनाये रखना है! केवल दोष निकालना ही उसका कर्तव्य नहीं है उसे अध्यापकों के गुणों पर भी प्रकाश डालना चाहिए जो अध्यापक अध्यापन कार्य में लापरवाही प्रदर्शित करे उनको कठोर चेतावनी दे! अध्यापकों के समान ही प्र. अ को अपने छात्रों की सामूहिक एवं व्यक्तिगत कठिनाइयाँ दूर करने केलिए तत्पर रहना चाहिए।

24/8/05

10. सामाजिक भावना

विद्यालय एक सामाजिक संस्था है! प्र-अ को समाज की तत्कालिन आवश्यकताओ तथा इच्छाओ की सदा पूर्ती करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। विद्यालय योजनाओं में छात्रों के माँ-बाप वा समाज के अन्य सदस्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करना पाठशालाओं तथा समाज दोनों केलिए हित कर सिद्ध होता है।

11. मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता

प्र. अ में मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का होना परम आवश्यक है, अध्या

उसे छात्र-छात्र के बीच, अध्यापक अध्यापक के बीच शिक्षक - छात्र के बीच, शिक्षक एवं कर्मचारियों के बीच, शिक्षक एवं अभिभावकों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, क्योंकि इन के सभी के उपयुक्त सम्बंधो पर भी विद्यालय की सफलता निर्भर है।

12. दृढ आत्मविश्वास

प्र. अ को अपने अंदर दृढ आत्मविश्वास उत्पन्न करना चाहिए! आत्मविश्वास की भावना ही पाठशाला के प्रबंध को ऊपर उठा सकते हैं! विश्वास की भावना उसे अपने अंदर ही नहीं वरन अध्यापकों के अंदर भी उत्पन्न करनी है।

13. समय की नियमितता

प्रत्येक प्र. अ को समय की पाबंदी का विशेष ध्यान रखना चाहिए! इसके विपरीत आचरण करने पर छात्र और अध्यापकों के समय की नियमितता की आशा करना व्यर्थ है!

14. भाषण कला में निपुण

प्र. अ को भाषण कला में निपुण होना चाहिए क्योंकि अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब की प्र. अ को जनसमुदाय में अपने विचार प्रकट करने पड़ते हैं।

15. न्याय प्रियता

प्र. अ को न्याय प्रिय होना चाहिए। उसे अध्यापकों के प्रति तथा छात्रों के प्रति हर दशा में न्याय पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

16. प्रभावशाली व्यक्तित्व

प्र. अ को एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का होना चाहिए। अर्थात प्र. अ के पद पर वही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है जिसमें आत्म संयम, सहन शीलता, प्रेम, दया, दूर दर्शिता, तथा मौलिकता आदि गुणों का सुन्दर समावेश हो।

17. ~~भौतिक~~ बौद्धिक एवं संवेगात्मक गुण

प्र. अ में निम्नलिखित भौतिक एवं संवेगात्मक गुण होना चाहिए। ~~खोज की अभिवृत्ति उच्च बुद्धि लब्धि~~

1. खोज की अभिवृति
2. उच्च बुद्धि लब्धी
3. योजनाओं की व्याख्या करने की योग्यता
4. छात्रों तथा उनकी अभिवृद्धि का ज्ञान
5. संप्रेषण शक्ति
6. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समझदारी
7. विभिन्न विषयों का ज्ञान

आधुनिकता, शिक्षा सिद्धान्तों तथा व्यवहारों का ज्ञान आदि।

18. व्यक्तिगत सामाजिक एवं नैतिक गुण

एक सफल प्र. अ में निम्न लिखित व्यक्तिगत, सामाजिक एवं नैतिक गुण होना चाहिए - निष्पक्ष, दूसरे के व्यक्तित्व को आदर देना, आत्म विश्वास, सहयोगी, सहानुभूति पूर्ण व्यवहार, ईमानदार, समाज के प्रति सेवा भावना, सद् चरित्र, आत्म नियंत्रण, आत्म सम्मान आदि।

25/8/05

II व्यवसायिक गुण

1. व्यवसायिक ज्ञान

व्यवसायिक ज्ञान के अभाव में प्र. अ अपने पद के दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वाह सफलता पूर्वक नहीं कर सकता। प्र. अ को अपने विद्यालय के उद्देश्य एवं उनकी प्राप्ती के साधनों का निर्धारण करने केलिए माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की आवश्यकताओं आदर्शों आदि का ज्ञान रखना चाहिए। उसे इस बात का भी ज्ञान होना चाहिए की शिक्षा प्रणाली में उसके विद्यालय का क्या महत्व है। एवं उसके क्या कार्य है? उसे सामाजिक संस्थाओं तथा शैक्षिक आंदोलनों के दर्शन एवं इतिहास की विशेषताओं एवं मनोविज्ञान तथा सीखने की प्रक्रियाओं से अवगत होना चाहिए। माध्यमिक स्कूल के प्र अ

को मुख्यतः किशोरावस्था की विशेषताओं का ज्ञान होना आवश्यक है! क्योंकि वह इसी अवस्था के बालकों के संपर्क में रहता है और उसे उनकी समस्याओं को हल करना होता है। उसे विद्यालय प्रशासन की रीतियों पाठ्यक्रम निर्धारण के सिद्धान्तों शिक्षण विधियों आदि का भी ज्ञान होना चाहिए! उसे सदैव अपने व्यवसायिक ज्ञान को नवीनतम बनाये रखने केलिए व्यवसायिक साहित्य का अध्ययन करते रहना चाहिए!

2. विद्वता का गुण

प्र० अ शिक्षक वर्ग तथा समाज दोनों का नेता होता है! शिक्षक वर्ग का नेता होने के नाते उससे एक आशा की जाती है की वो विद्वान हो! उसको कम से कम ज्ञान के किसी एक क्षेत्र का विशेषज्ञ अवश्य होना चाहिए! इसके अतिरिक्त नेतृत्व करने केलिए उसे आधुनिकतम शैक्षिक सिद्धान्तों एवं प्रयोगों का ज्ञान होना चाहिए! उसको शिक्षक के रूप में अनुभव प्राप्त होना चाहिए क्योंकि उपदेश की अपेक्षा उदाहरण प्रस्तुत करने से वो अपने कार्यों को अधिक सफल बना सकता है! इसके अतिरिक्त उसको सदैव अध्ययन में रुचि रखनी चाहिए! वह स्वयं ही तथा शिक्षक वर्ग की उन्नति तभी कर सकता है जब वो अपने विषय एवं

•व्यवसायी का विद्यार्थी बनी रहे।

3 निष्ठावान

विद्यालय के नेता के लिए यही आवश्यक नहीं है की वो चरित्रवान एवं विद्वान व्यक्ति हो वरन वो निष्ठा वाला व्यक्ति भी होना चाहिए। यदि उसको अपने व्यवसाय में निष्ठा नहीं होगी तो वो अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों को सफलता पूर्वक निर्वाह करने में असमर्थ रहेगा। अतः प्र. अ को अपने व्यवसाय, शिक्षकों, छात्रों तथा मानव स्वभाव में निष्ठा रखना आवश्यक है। इस निष्ठा के अभाव में वो सफलता पूर्व नेतृत्व नहीं कर सकता।

29/8/05

III प्रशासकीय गुण

प्र. अ में निम्न लिखित प्रशासकीय गुणों का होना आवश्यक है।

1. कुशल प्रशासक

प्र. अ को कुशल प्रशासक होना चाहिए। प्रशासक तभी हो सकता है जब उसमें अच्छा नियोजन करने, संगठन करने, योग्य शिक्षक तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति करने की योग्यता एवं उनके कार्यों की व्यवस्था करना, संचालन, समन्वय तथा रिपोर्ट एवं बजट बनाने की ~~क्षमता~~ क्षमता हो।

२. कुशल संगठन कर्ता

प्र. अ को कुशल संगठन कर्ता होना चाहिए। अतः उसमें संगठन करने की कुशलता होना परम आवश्यक है। पाठशाला के समस्त कार्यों का वर्गीकरण उसको करके उसके योग्यता अनुसार विभाजित करना नूतन योजनाये निर्मित करना तथा उन्हें कार्य रूप में परिणित करना प्र.अ के प्रमुख कार्य हैं। अतः उसको विद्यालय संगठन के मूल सिद्धान्तों, समाज की आवश्यकताओं एवं आदर्शों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी योग्यता के कारण वो विद्यालय संगठन सम्बन्धित बहुत सी समस्याओं को हल कर सकता है। साथ ही विद्यालय के कार्यक्रम का विभाजन, उसका एकीकरण पाठशाला की उन्नती और अवनती का पता लगाना भी उसके प्रमुख कर्तव्य है।

उपर्युक्त गुणों को देखने से स्पष्ट हो जाता है की प्र. अ यदि उपर्युक्त गुणों से विभूषित नही है तो वो अपने पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों को समुचित ढंग से निर्वाह नही कर सकता। अध्यापक प्र. अ के लिए व्यवसायिक गुण और वैयक्तिक गुण चाहिए।

प्रधानाध्यापक के कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व

"विश्व में ऊछ ही व्यक्ति प्र.अ से अधिक उच्च कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व रखते हैं।" यह कथन पूर्णतया सत्य है, क्योंकि किसी राष्ट्र का निर्माण विधान सभाओं, कारखानों आदि में नहीं होता वरन् विद्यालयों में होता है। विद्यालय में उन भावी नागरिकों का निर्माण किया जाता है, जिनके ऊपर समाज राष्ट्र एवं विश्व की कार्यों के संचालन का भार रहता है। इस प्रकार प्र.अ के ऊपर बहुत ही महत्त्वपूर्ण दायित्व आजाता है। उसका सबसे प्रमुख कर्तव्य शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ती के सम्बन्ध में है। व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं आदर्शों एवं आकांक्षाओं ध्यान में रखकर जो उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं। उनको अधिकतम रूप से विद्यालय का प्रमुख कर्तव्य है। अतः प्र.अ को विद्यालय का नेता होने के नाते इनकी प्राप्ती के लिए निम्न लिखित कार्यों एवं दायित्वों का वहन करना पड़ता है।

1) नियोजन

प्रत्येक शैक्षिक संस्था के प्रधान का

प्रमुख दायित्व अपने कर्तव्यों तथा क्रियाओं को वर्ष भर के लिए नियोजन करना है। परन्तु उसे इनका नियोजन मुख्यतः निम्नलिखित चार स्तरों पर अवश्य करना चाहिए।

A) विद्यालय खुलने से पूर्व - इस स्तर पर उसे निम्नलिखित कार्यों का नियोजन करना आवश्यक है।

a) गर्मियों की छुट्टियों के बाद विद्यालय खुलने की तिथी घोषणा करना। प्रवेश के लिए प्रार्थना पत्रों की प्राप्ती कि अंतिम तिथि को विद्या की सूचना फलक (N.B) पर प्रदर्शित करना चाहिए।

b) प्रवेश से संबंधित नियमों का निर्धारण करना।

c) विद्यालय में फर्नीचर, अन्य साज सज्जा, पुस्तकालय में पुस्तकें आदि की उपलब्धी की व्यवस्था करना।

d) आवश्य रजिस्टरों और फाइलों की व्यवस्था करें।

e) सम्पूर्ण सत्र के लिए क्रियाओं का कलेन्डर तैयार करें।

f) आवश्यकतानुसार शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति करवायें।

g) विद्यालय भवन की सफाई, फर्नीचर की पॉलिश आदि की व्यवस्था करें।

B) विद्यालय के खुलने के दिन

विद्यालय जिस दिन खुले उस दिन से लेकर प्रथम सप्ताह की समाप्ति तक निम्न कार्यों की व्यवस्था केलिए नियोजन करें।

a) शिक्षक तालिका, छात्र तालिका, तथा कक्षा कक्ष तालिकायें तैयार करवायें

b) शिक्षकों में कार्य विभाजन करें, कार्य विभाजन करते समय निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखें।

1. शिक्षक की रुचि - कार्य का विभाजन करते समय उसे शिक्षकों के रुचियों का ध्यान रखना चाहिए।

2. शिक्षक की योग्यता - कार्य विभाजन करते समय उसे शिक्षक कि शास्त्रीय योग्यता, कार्य क्षमता, कार्य में उत्साह, वास्तविक योग्यता आदि पर ध्यान देना चाहिए।

c) प्रत्येक शिक्षक से उनकी क्रियाओं तथा पाठों की योजना तैयार करवायें।

d) विभिन्न पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था नियोजन करके शिक्षकों को इनकी व्यवस्था के दायित्व के भार का विभाजन करें

e) विद्यालय में आवश्यकतानुसार भौतिक सुविधा केलिए व्यवस्था करायें

f) विद्या असम्बली की व्यवस्था करें

D) पाठ्यपुस्तकों का चयन करें।

c) **सत्र के दौरान** : प्र. अ को निम्न लिखित कार्यों के लिए सत्र के दौरान नियोजन करना चाहिए।

1. शिक्षण कार्य का संगठन।
2. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का संगठन।
3. मूल्यांकन की व्यवस्था करना।
4. विशेषज्ञों के भाषणों का आयोजन करना।
5. कक्षा परिनिरीक्षण की व्यवस्था करना।
6. विद्यालय अभिलेखों छात्रों के अभिलेखों छात्रों के लिखित कार्य आदि के सत्यापन के लिए व्यवस्था करना।
7. निर्देशन सेवाओं को संगठित करवाना।
8. शिक्षा विभाग, प्रबन्ध समिति तथा अन्य से पत्र व्यवहार के लिए उपयुक्त व्यवस्था करना।

D) **सत्र की समाप्ति पर** : प्र. अ को निम्नलिखित कार्यों के लिए भी आयोजन करना आवश्यक है।

1. वार्षिक, खेलकूद अभिभावक दिवस, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वार्षिक पुरस्कार वितरण दिवस आदि

का आयोजन करना।
2. छात्रों के वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना।
3. उपस्थिति फीस आदि हिसाब जाँच कराना।
4. कक्षा प्रोन्नति के नियमों का निर्धारण कराना।
5. अगले सत्र की तैयारी केलिए आवश्यक कदमों पर विचार विमर्श करना।

II. अध्यापन कार्य

प्र. अ सर्वप्रथम शिक्षक है फिर प्रशासक प्र. अ द्वारा शिक्षण कार्य न केवल शिक्षकों के मार्गदर्शन केलिए आवश्य है वरन् यह, उसके लिए छात्रों के संपर्क में आने का सर्वोत्तम साधन है। उसको बारह से पन्द्रह कालांश तक शिक्षण कार्य करना चाहिए। उसे एक या दो विषयों का विशेषज्ञ होना चाहिए। सविधानुसार अपने प्रिय विषयों को पढ़ाने रहना उसके लिए उत्तम रहेगा। उसे विद्यालय के उच्चतम तथा निम्नतम दोनों ही कक्षाओं में शिक्षण कार्य आवश्य करना चाहिए। क्योंकि छोटी कक्षा पाठशाला की नींव होती है। शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने केलिए उसे शैक्षिक सामग्री की व्यवस्था करनी चाहिए। तथा शिक्षा के सिद्धान्तों नवीन शिक्षण विधियों आदि को

ज्ञान...

व्यवहारिक रूप भी प्रदान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे शिक्षकों को विभिन्न सेमिनारों वर्कशापों आदि में भाग लेने केलिए भेजे।

III पाठ्यक्रम सम्बंधि कार्य

प्र. अ को बालकों के मानसिक विकास केलिए उपयुक्त पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना आवश्यक है। यद्यपि हमारे देश में पाठ्यक्रम की निर्धारण में प्र. अ को कोई विशेष हाथ नहीं है। पाठ्यक्रम शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित किया जाता है। परंतु उनको उचित रूप से कार्यरूप में प्रयोग करना प्र. अ का ही कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त उच्चाधिकारियों द्वारा सुझाव माँगे जाने पर प्र. अ को अपने सहयोगियों से विचार विमर्श करने पर ही सुझाव देना चाहिए। वस्तुतः शिक्षा विभाग एवं माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम रूपरेखा में रूप में होते हैं। उन रूप रेखा को पूर्ती करने केलिए प्र. अ उत्तरदायी होते हैं।

IV पाठ्यपुस्तकों का चयन

पाठ्यपुस्तकों का उचित चयन करना प्र. अ का महत्वपूर्ण दायित्व है। प्र. अ को

पाठ्यपुस्तकों का चयन बालकों की दृष्टि से करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह उन मनोवैज्ञानिक पुस्तकों का चयन करे जो उनके मानसिक विकास में सहायक हो और बालकों को स्पष्ट चिंतन, स्वतंत्र निर्णय, विश्लेषण आदि करने के लिए प्रेरित करें।

पाठ्यपुस्तकों के चयन मे निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. पुस्तकों में जो विषय प्रतिपादित किया गया क्या वह उचित ढंग से प्रतिपादित किया है या नहीं?
2. पुस्तक की विषयसामग्री छात्रों में प्रेरणा उत्पन्न करनेवाली है या नहीं।
3. भाषा सरल तथा बोधगम्य है या नहीं? शैली की स्पष्टता पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।
4. क्या पुस्तकों की रचना में मनोवैज्ञानिक प्रणाली अपनायी गयी हैं?
5. पाठ्यपुस्तक पाठ्यक्रम को पूरा करती है या नहीं?
6. पाठ्यपुस्तक जिस कक्षा के लिए लिखी गयी है वह उस कक्षा के मानसिक स्तर की है या नहीं।

7. आवश्यकतानुसार उसमें चित्रों का उपयोग किया गया है या नहीं। पाठ्यपुस्तक की छपाई सुन्दर स्पष्ट तथा छात्रों के आयु को के अनुकूल है या नहीं। वह पर्याप्त सस्ती है या नहीं।

उपर्युक्त समस्त बातों को ध्यान में रखकर ही किसी पाठ्यपुस्तक को कक्षा के लिए निर्धारित करना चाहिए।

V <u>पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाये और उसका संगठन</u>

आधुनिक युग में शिक्षा के नवीन दृष्टिकोण एवं प्रवृत्तियों के फलस्वरूप अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं को पाठ्यक्रम का एक अंग माने जाने लगा और अब उन्हें पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के नाम से पुकारें जाने लगा। प्र. अ छात्रों के आयु और रूचियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की खेल कूद संबंधी क्रियाओं का संगठन करना चाहिए। इसकेलिए उसे प्रत्येक क्रिया केह संगठन एवं संचालन केलिए छात्रों की समिति का निर्माण कर सकता है और उसको एक शिक्षक के पदप्रदर्शन में रखना भी चाहिए। इनके संगठन के साथ साथ उसे समय समय

पर इनका परिवेक्षण भी करना चाहिए।

III अनुशासन की स्थापना

पाठशाला के अन्दर अनुशासन की व्यवस्था करना प्र. अ का प्रमुख कार्य है। इसके लिए बालकों में उन नैतिक गुणों का विकास होना आवश्यक है जो उनके आचरण को उत्तम बना सके। अनुशासन का महत्व केवल पाठशाला केलिए नहीं है वरना छात्रों के सम्पूर्ण जीवन केलिए भी आवश्यक है। अतः अनुशासन स्थापित करने केलिए प्र. अ को विद्यालय मे सौहृद पूर्ण वातावरण निर्मित करना आवश्यक है। ऐसी वातावरण की स्थापना में स्वयं प्र. अ का व्यक्तित्व, आचारण बात-चीत करने का ढंग, मानवीय दृष्टिकोण एवं प्रशासन बहुत ही महत्व रहता है।

24/11/08 7. शिक्षकों के साथ सम्बंध

अध्यापक पाठशाला प्रबंध के प्रमुख तत्व है। इस कारण प्रधानाध्यापक का प्रमुख कर्तव्य है की वो उनके साथ उदारता तथा भ्रातृत्व का व्यवहार करें। आवश्यकता अनुसार हर प्रकार की सलाह देते रहने से प्र. अ तथा अध्यापकों में सद्भावना बनी रहती है। जो की विद्यालय के स्तर को उठाने में सहायक सिद्ध होती है।

8. छात्रों के अभिभावकों के बीच सम्बंध

शिक्षा के वास्तवीक लक्ष्य की प्राप्ति उस समय प्राप्त हो सकती है जब की अध्यापकों तथा छात्रों के अभिभावकों में पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावना हो। पाठशाला में आनेवाले प्रत्येक अभिभावकों से प्र. अ को अत्यंत उत्साह तथा धैर्य चौर्य के साथ मिलना चाहिए। वर्ष में एक या दो बार पाठशाला के अंदर अभिभावकों को निमंत्रित करके स्कूल के अब प्रगति का अवलोकन करा देना उचित है। वार्षिकोत्सव पर तो उन्हें अवश्य ही निमंत्रित करना चाहिए।

9. प्रधानाध्यापक और समाज

प्र. अ को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए की विद्यालय और समाज का सम्बंध अटूट है। उसे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ती भी करनी है। तथा समाज में फैली हुई बुराईयों को दूर करना है। समय समय पर छात्रों द्वारा समाज सेवा श्रमदान आदि की व्यवस्था द्वारा वो विद्यालय को समाज के निकट लासकते है। साथ ही उसका कर्तव्य है की विद्यालय के छात्रों को समाज केलिए योग्य से योग्य नागरिक बनाये।

10. दफ्तर का कार्य

प्र. अ का समाज के विभिन्न व्यक्तियों से सम्बंध होता है तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के पत्र उसके पास आते हैं इस कारण उसका कर्तव्य होजाता है कि वो उनका उत्तर शीघ्र से शीघ्र दे। शिक्षा विभाग से आयी हुई डाक का उत्तर तुरन्त न देने से विद्यालय की प्रगती में बाधा पड़ती है। उसे ~~क्लर्कों~~ क्लर्कों के कार्य की देखरेख करते रहना

चाहिए।

* ii. परिनिरीक्षण

परिनिरीक्षण प्र. अ का बहुत ही महत्वपूर्ण दायित्व है। परिनिरीक्षण के द्वारा ही वो विद्यालय की समस्त गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और यह जानने भी सफल होसकता है कि किस क्षेत्र में कमियाँ हैं जिनसे उनको सुधार ने केलिए कदम उठाये जासके। केवल शिक्षण कार्य की ओर ध्यान देना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि विद्यालय के बाहर छात्र क्या करते रहते हैं - खेल कूद छात्रावास, बालकों का उठना, बैठना, सोना एवं खाना आदि सभी की देख-भाल करना परम आवश्यक है। परन्तु परिनिरीक्षण केवल बौद्धिक विकास के दृष्टिकोण से ही नहीं बल्की छात्रों के शारिरिक सामाजिक एवं नैतिक विकास को भी ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। प्र अ के परिनिरीक्षक सम्बन्धी दायित्व निम्न लिखित हैं।

a.) शिक्षण कार्य

प्र. अ को नियमित रूप से विभिन्न कक्षाओं के शिक्षण कार्य की देखभाल

करना आवश्यक है। यदि वो निरीक्षण के कार्यक्रम की एक योजना बनाये तो सभी कक्षाओं एवं सभी विषयों की देखभाल हो जायगी! और इस कार्य में किसी प्रकार की अस्तव्यस्तता नहीं आयगी। जब वो निरीक्षण कलित कक्षा में जाये तो उसे अपने साथ एक पुस्तिका ले जानी चाहिए। वह उनमें उन सुजावों को लिखे जिनके द्वारा वो शिक्षण कार्य में सुधार लाकर उसके स्तर को उच्च बनाना चाहता है। निम्नलिखित बातों पर ध्यान देकर प्र. अ. परिनिरीक्षण को सफल बना सकता है।

1) प्र. अ. का दृष्टिकोण रचनात्मक तथा सहानुभूति पूर्ण होना चाहिए। क्योंकि यदि वो दोष निकालने के उद्देश्य से कक्षा में जायेगा तो उसे शिक्षक उसके सन्देह की दृष्टि से देखने लगेगा। कक्षा में उसका प्रवेश एक परामर्शदाता, सहयोगी एवं मित्र के रूप में होना चाहिए।

2) प्र. अ. को शिक्षण कार्य की देखभाल करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए अध्यापक किस प्रकार की सामग्री के साथ कार्य कर रहा है। क्योंकि उसे बालकों के स्तर।

उपलब्ध सामग्री, शिक्षण विधि आदि सभी का ध्यान रखना चाहिए।

3) प्र अ अपने सुझावों को शिक्षक पर जबर्दस्ती न लागो करना वो उसको विचार विमर्श करने का अवसर प्रदान करें।

b) छात्रावास

जिन विद्यालयों के पास छात्रावास होता है उनके प्र. अ का एक कर्तव्य यह भी होजाता है कि वे उसका भी परिनिरीक्षण करे। प्र. अ को छात्रों के भोजन, खाना बनाने के प्रबन्ध तथा पीने की पानी की व्यवस्था, खाना खाने के स्थान, बर्तनों की सफाई आदि के प्रबन्ध भी देखभाल करनी चाहिए वह बालकों का शयन कक्षों का भी निरीक्षण करे और यह भी देखे की कमरों में सफाई एवं रोशनी का उपयुक्त प्रबन्ध या नहीं। उसे यह भी देखना चाहिए की खेल के मैदान पुस्तकालय, भोजनालय आदि का समुचित रूप से उपयोग करते हैं या नहीं इसके अतिरिक्त छात्रावास की नियमावली, उपस्थिति रजिस्टर आदि का भी निरीक्षण करनी चाहिए।

C. कार्यालय कार्य एवं रजिस्टर

प्र. अ. को दफ्तर के कार्य का परिनिरीक्षण करना भी आवश्यक है। उसे प्रतिदिन पत्र व्यवहारों को देखना चाहिए तथा उनके उत्तर शीघ्र से शीघ्र लिख देना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे दफ्तर के रजिस्टरों, लेखा आदि की देखभाल करनी चाहिए।

D. सामान्य परिनिरीक्षण

इस शीर्षक के अंतर्गत उसके बहुत से व्यावहारिक दायित्व होते है। उदा :- पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं, विद्यालय के भौतिक तत्वों शारीरिक क्रियाओं, छात्र संघ की क्रियाओं, कान्टीन आदि का निरीक्षण। प्र. अ. को उक्त सभी क्रियाओं का यदा तदा निरीक्षण करना आवश्यक है उसे यह देखना चाहिए उसके संगठन एवं संचालन में शक्ति, धन, समय का दुरुपयोग नहीं होरहा है। उसे विद्यालय के भौतिक तत्वों - विद्यालय भवन, फर्नीचर, शैक्षिक सामग्री पुस्तकालय आदि की ओर ध्यान देना चाहिए।

12. मूल्यांकन

प्र. अ का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य यह है की वो अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था का समय समय पर मूल्यांकन करें। शिक्षक के स्तर को सुधारने एवं उच्च बनानेकेलिए जिन सिद्धान्तों एवं प्रक्रियाओं को प्रयोग में लाया गया वे पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का संगठन एवं संचालन शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ती में किस सीमा तक सहायक रहा। विद्यालय का अनुशासन एवं उसकी सामान्य चारित्रिक भावना बालकों में सामाजिक एवं नैतिक गुणों के विकास में कहाँ तक सहायक है आदि बातों का ज्ञान प्राप्त करने केलिए उसे मूल्यांकन करना आवश्यक है। इन समस्त बातों के ज्ञान केलिए प्र अ को मूल्यांकन की विभिन्न रीतियां निरीक्षण, परीक्षण, साक्षात्कार; प्रश्नावली, अभिलेख आदि का प्रयोग करना चाहिए। प्र. अ को अपने बालकों की उन्नती एवं प्रकृति, उनकी सीमाओं एवं कठिनाइयों आदि का भी पता लगाने केलिए उसे निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

- परीक्षा के प्रश्नपत्रों का निरीक्षण करके देखा जाये की प्रश्नपत्र अधिक सरल या कठिन तो नहीं है।

2. अंकन के स्तर की जाँच होनी चाहिए।

3. साप्ताहिक एवं मासीक जाँचो की व्यवस्था होनी चाहिए। तथा इन जाँचो का परिणामों का क्रमबद्ध लेखा रखना चाहिए।

4. बालकों के संचित अभिलेख तैयार कराये जाए इन अभिलेखों में छात्र के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी व्यवहारिक क्षमता सेवा भाव, सहयोग आदि गुणों की जाँच व्यक्तित्व के लक्षण - चरित्र, नेतृत्व, आत्मविश्वास, आत्म नियंत्रण आदि के जाँच का विवरण दीया जाना चाहिए। इस कार्य में उसे शिक्षकों एवं अभिभावकों के विचारों का जानना आवश्यक है।

प्र. अ को अपने सहयोगियों एव विद्यालय के अन्य कर्मचारियों के कार्यों के भी जाँचे करना आवश्यक है इनके कार्यों का मूल्यांकन करते समय प्र. अ. को निम्न लिखित बातों का ध्यान देना चाहिए।

1. अपने साथियों की अच्छाईयों एवं बुराईयों को स्पष्ट रूप से बताये।

2 उनके कार्य का मूल्यांकन सुधार की दृष्टिकोण

को ध्यान में रखकर करें।

3 अपने कार्यकर्ताओं में आत्म मूल्यांकन आत्म उन्नति की भावनाओं का विकास करें।

4. मानवीय सम्बन्धों को उपयुक्त बनाने के लिए अपने कार्यकर्ताओं के प्रति सहानुभूति तथा सहायता का दृष्टिकोण रखें।

13. <u>मानवीय सम्बन्धों की स्थापना</u>

प्र अ की सफलता की सबसे आवश्य शर्त यह है की वो अपने साथियो अधीनस्त कर्मचारियों छात्रों एवं उनके अभिभावकों तथा समाज के सदस्यों आदि से उपयुक्त मानवीय सम्बन्ध स्थापित करे इसलिए उसे निम्न लिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

1. प्र अ को अपने साथियों को व्यक्तिगत रूप से जानना चाहिए।
2. प्र अ को सभी लोगों के अधिकतम सहभागिता को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
3. प्र अ को विद्यालय की नीतियों एवं क्रियाओं का विकास सहयोगी आधार पर करना चाहिए।

4. प्र. अ को अपने साथियों अधीनस्त कर्मचारियों छात्रों, तथा अभिभावकों में विश्वास प्रेम तथा आदर का भाव विकसित करना चाहिए।

5. प्र. अ को स्वयं तथा अपने साथियों के विकास केलिए सतत प्रयास करते रहना चाहिए।

प्रधानाध्यापक और अध्यापक मण्डल

- विद्यालय को उचित रूप से चलाने केलिए प्र. अ तथा अध्यापक मण्डल के सम्बंध अत्यंत मधुर होनी चाहिए। प्र. अ को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए की विद्यालय कि उन्नती अवनती सब कुछ अध्यापक मण्डल पर ही निर्भर है। यदि विद्यालय के अध्यापक योग्य चतुर तथा चरित्रवान होंगे तो निश्चय ही विद्यालय का स्तर ऊँचा उठेगा। समस्त विद्यालय की कार्य कुशलता वहाँ के अध्यापक मण्डल पर निर्भर है। प्र. अ का कार्य केवल नियंत्रण तथा निरीक्षण करना है। वास्तविक कार्य तो अध्यापक मण्डल द्वारा ही किया जाता है। इस कारण प्र. अ को अध्यापक मण्डल का सहयोग प्राप्त करने केलिए अपने

दृष्टिकोण अत्यंत उदार और सहानुभूति पूर्ण बनाना चाहिए।

प्र. अ का दृष्टिकोण प्रजातन्त्रात्मक होना चाहिए। वह प्रत्येक अध्यापक की बातों को सुने तथा उचित सलाहों को अपनाये।

यदि प्र. अ किसी कठिन समय में अपने सहयोगी अध्यापकों की सहायता कर देता है तो ऐसा करके वो समस्त अध्यापक मण्डल के स्नेह का पात्र बन जाता है। यदि कोई अध्यापक अपनी शिक्षा सम्बन्धी ~~अभ्यास~~ योग्यता का विकास करना चाहता है तो प्र. अ को उसे प्रत्येक प्रकार की सुविधायें देने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्र. अ के लिए सबसे मुख्य बात ध्यान में रखने की यह है कि वो समस्त अध्यापकों के साथ व्यवहार करे। उसे सबके साथ सद्भावना तथा मित्रता का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। परन्तु साथ ही जो अध्यापक हृदय से विद्यालय की उन्नती में लगा हुआ है उन्हे प्रोत्साहित करने में नहीं हिचकना चाहिए।

वास्तव में प्र. अ. का अध्यापक मण्डल का सहयोग प्राप्त करने केलिए अध्यापक मण्डल के साथ अपना व्यवहार यथा सम्भव सहानुभूतिपूर्ण बनाना चाहिए।

~~विद्यालय निरीक्षण एवं~~

विद्यालय निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण

विद्यालय निरीक्षण

विद्यालयों का निरीक्षण ब्रिटीश कालीन शिक्षा की देन है। इसमें सरकार द्वारा निरीक्षक विद्यालय में जाकर कुछ कक्षाओं, प्रयोगशालाओं, खेल के मैदानों आदि की जाँच करते है। शिक्षकों तथा प्रधानाचार्य से कुछ प्रश्न पूछकर जानकारियाँ प्राप्त करते हैं, कार्यालय संबंधी रजिस्टरों वा विद्यालय वित्तीय मामलों की भी समीक्षा करते हैं। निरीक्षक गण अपनी रिपोर्ट उच्च अधिकारियों को देते है और कई जगह से होती हुई वह रिपोर्ट विद्यालय में आते हैं। प्रायः देखा गया है की निरीक्षण केलिए बड़ी तैयारियाँ की जाती हैं। सफाई भी कही कही पर तो निरीक्षण के नाम पर ही होते है। एक तो निरीक्षक के सामने वातावरण कित्रिम बना दिया जाता है फिर रिपोर्ट भी बहुत कुछ अस्पष्ट और आवास्तवीक हो जाती है और निरीक्षण का परिणाम कुछ नही निकलता है। ऐसा निरीक्षण विद्यालय प्रक्रिया

में सुधार नहीं ला पाता और केवल औपचारिक मात्र रहता है।

विद्यालय पर्यवेक्षण

शिक्षा के क्षेत्र में होरहे क्रान्तिकारी परिवर्तनों के साथ-साथ निरीक्षण के स्थान पर एक नयी धारणा पर्यवेक्षण का उदय हुआ है। यह उद्देश्य प्रणाली एवं विधि में निरीक्षण से भिन्न है। पर्यवेक्षण शिक्षार्थी, शिक्षकों विद्यालय की क्रियाओं के विकास में सहायता प्रदान करने का एक साधन है। यही एक विशिष्ट सहयोगी सेवा के रूप में है। इस में सकारात्मक दृष्टिकोण से वास्तविक जाँच व्यवस्था में सुधार लाने केलिए की जाती है।

किम्बल → "पर्यवेक्षण उत्तम शिक्षक अधिगम परिस्थितियों के विकास हेतु सहायता है।"

वार्टकी → "पर्यवेक्षण शिक्षकों के विकास, शिक्षार्थियों की अभिवृद्धि तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार का उपाय है।"

2/12/05 वर्तमान निरीक्षण के दोष

1. निरंकुशा नीति

(वर्तमान निरीक्षण प्रणाली अत्यंत दोष पूर्ण है। प्रत्येक जिला निरीक्षक अपने पद की निरंकुशता पूर्ण स्थिति से लाभ उठाता है। दूसरे की सलाह मानना वे अपना अपमान समझते हैं। प्रत्येक प्र. अ को अपने पद की सुरक्षा तथा विद्यालय के हित केलिए निरीक्षक की आज्ञा आँख नीचेकर मानना जरूरी है। पड़ता है।)

2. केवल खाना पूर्ति

(दूसरे वर्तमान निरीक्षक इसी विद्यालय का निरीक्षण केवल कर्तव्य निभाने केलिए करते हैं उन्हें निरीक्षण करना है, अतः शीघ्रता से देखभाल करके अपने कर्तव्य को समाप्त कर देते हैं। इस प्रकार निरीक्षण केवल खाना पूर्ति करना बन जाता है।)

3. समय का दुरुपयोग

(निरीक्षण में जिन बातों में समय देना चाहिए उनमें न देकर व्यर्थ की बातों में अधिक समय व्यय किया जाता है। अधिकांश निरीक्षक अपना अधिक समय एकाउण्ट्स Accounts देखने या व्यवस्था का निरीक्षण करने आदि में लगा देते हैं। शिक्षण की ओर तथा अध्यापकों की दशा की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता।)

4. कुछ विषय निरीक्षण के क्षेत्र से परे

(कुछ विषयों को प्रत्येक निरीक्षक नहीं समझ सकता। उदा:- संगीत, चित्रकला आदि। सामान्य निरीक्षक इन विषयों को समझ न सकने के कारण निरीक्षण ठीक प्रकार नहीं कर पाते।) ~~अध्यापक~~

5. अध्यापकों से सम्पर्क का अभाव

अधिकांशतः (निरीक्षक अध्यापकों से अपने को पूर्णतया अलग रखते हैं। इस प्रकार अध्यापकों की समस्याओं को समझने मे

असमर्थ रहते हैं।

6. निरीक्षक का ध्वंसात्मक दृष्टिकोण

निरीक्षकों का दृष्टिकोण रचनात्मक न होकर ध्वंसात्मक होता है। वे मात्र गलतियाँ ही निकालते हैं। ये गलतियाँ शिक्षकों में भय उत्पन्न करती हैं। साथ ही वे इन गलतियों को सुधारने के लिए भी कोई सुझाव नहीं देते हैं।

लारेन्स ने इस सम्बन्ध में लिखा है "निरीक्षक गलती खोजने वाला होता है जो कि विद्यालय की गलतियों को खोजने के लिए प्रयत्न शील रहता है। जब की प्रधानाचार्य और शिक्षण गण उसको हर सम्भव उपाय से प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। अतः निरीक्षण को केवल शिक्षकों में नैराश्य एवं असन्तोष उत्पन्न करने वाला कहा जाता है।"

11/1/06

परम्परागत निरीक्षण तथा आधुनिक परिनिरीक्षणों में अन्तर :-

1. परम्परागत निरीक्षण विद्यालय में प्रचलित स्थितियों की जाँच तथा विद्यालय व्यवस्था की कमियों को बताने तक ही सीमित है, उसको दूर करने के लिए उत्तरदायी नहीं है, आधुनिक

... धारण करता है।

6. व्यावसायिक शिक्षा :-

पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाय। व्यावसायिक शिक्षा द्वारा अनुशासन की समस्या का हल सरलता से किया जा सकता है।

7. प्रभावशाली नैतिक शिक्षा का प्रबंध :-

छात्रों के चरित्र को सुधारने के लिए आवश्यक है कि विद्यालय में प्रभावशाली नैतिक शिक्षा का प्रबंध किया जाय।

8. आधुनिक शिक्षा के दोषों को दूर किया जाय :-

वर्तमान शिक्षा के अनेक दोष हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। पाठ्यक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम को उपयोगी तथा व्यावहारिक बनाये जाय।

9. छात्रों को राजनीति से दूर रखा जाय :-

छात्रों को दलगत राजनीति से यथासंभव दूर रखा जाय। वे राजनीति को

पुस्तकालय का महत्व

विद्यालय में पुस्तकालय का महत्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकालय द्वारा छात्र अपनी बुद्धि का विकास करते है तथा अध्ययन करने की प्रवृति ~~लात~~ डालते है। पुस्तकों द्वारा हम अपने पूर्वजों के अनुभवों से परिचित होते है तथा हमें ज्ञात होता है कि हमारे देश ने किस सीमा तक सांस्कृतिक उत्थान किया। पुस्तके हमारी जीवन की पद प्रदर्शक है उनके द्वारा जीवन के गूढतम ~~गुप्त~~ रहस्यों को समझने की चेष्टा करते है। शिक्षकों के अनुसार किताब के बिना पुस्तकालय आत्मा के बिना शरीर के समान है। संसार के महान व्यक्तियों ने सदा पुस्तकों द्वारा अपने को प्रेरित किया है।

1. विद्यालय में पुस्तकालय का महत्व नीचे दिये गये है।

1. ज्ञान का विकास

माध्यमिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य

... कार्य करना है।

2. अभिभावकों को छात्रों की प्रगति की सूचना देना

(विद्यालय की ओर से छात्रों की शिक्षा सम्बन्धी सूचना तथा अन्य बातों का विवरण अभिभावकों के पास प्रतिमाह अवश्य भेजा जाए। विवरण में केवल शिक्षा सम्बन्धी तथा मानसिक प्रगति सूचनायें भी न हो वरन् शारीरिक, सामाजिक, नैतिक विकास का भी विवरण होना चाहिए।

3. प्रबन्ध मण्डल में अभिभावकों का प्रतिनिधित्व

(विद्यालय के प्रबन्ध मण्डल में अभिभावकों का प्रतिनिधित्व सर्वथा उचित है। इस प्रकार की व्यवस्था से अभिभावक विद्यालय में अधिक दिलचस्पी लेने लगते हैं।) समारोह

समारोह में निमंत्रण दिया जाए

(विद्यालय में होने वाले प्रत्येक समारोह में छात्रों के अभिभावकों को आमंत्र...

पड़ता है। वे अपने अध्यापकों को आदर की दृष्टि से देखने लगते हैं तथा उनके आदेश मानने के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

5. विद्यालय समाज के निकट आते हैं

शिक्षक-अभि. सहयोग जितना ताकतवर होता है उतना ही विद्यालय समाज के निकट आता है। दोनों मिलकर बालक को समाज का सच्चा तथा जागरूक नागरिक बना सकते हैं।

8/1/06

शिक्षक अभिभावक सम्बन्ध को दृढ़ करने के उपाय

1. प्रवेश के समय सहानुभूति पूर्ण व्यवहार

जब अभिभावक अपने बच्चों को लेकर विद्यालय में प्रवेश के लिए आते हैं तब प्र. अ. तथा अध्यापक को प्रत्येक बालकों के अभिभावक साथ सहानुभूति तथा स्नेह का व्यवहार करना चाहिए। अतः प्र. अ. और अध्यापक अभिभावकों के साथ अत्यंत नम्रता उदारता का व्यवहार करना चाहिए।

... विकास करना है।
प्रश्न उठता है कि क्या केवल पाठ्य पुस्तकें द्वारा ही छात्र का सर्वांगीण विकास सम्भव है? पाठ्य पुस्तकें केवल परीक्षा पास करने योग्य बनाती है। छात्र पाठ्य पुस्तकों को रटकर परीक्षा में पास हो जाते है, इस कारण उसका ज्ञान भी पाठ्य पुस्तकों तक ही सीमित रहता है, परन्तु ज्ञान के विकास के लिए अन्य पुस्तकों को पढना भी आवश्यक है। पुस्तकालय में समस्त प्रकार की पुस्तकें होती हैं ~~जिन्हें~~ जिन्हें पढ़कर अपने सामान्य ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

2. स्वाध्याय का अभ्यास :

पुस्तकों को अध्ययन करके छात्र अपने अंदर स्वाध्याय की आदत डालते हैं। पाठ्य पुस्तकों से सम्बन्धित अन्य पुस्तकों को पढ़ने से उनके अन्दर अपने विषय

के प्रति जिज्ञासा तथा रुचि उत्पन्न होता है,

3. पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सहायक

विद्यालय में होने वाली विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियायें जैसे वाद-विवाद तथा कविता प्रतियोगिता आदि में पुस्तकालय द्वारा सहायता मिल जाती है। छात्र इन क्रियाओं में भाग लेने के लिए विभिन्न पुस्तकों को आवश्यकतानुसार अध्ययन करते हैं।

4. विभिन्न रुचियों का विकास

पुस्तकालय छात्रों में विभिन्न रुचियों के विकास करते हैं वे अनेक विषयों पर पुस्तके पढ़ते हैं तथा अपने विशेष रुचि तथा मानसिक सामर्थ्य के अनुसार अपने मस्तिष्क का विकास करते हैं। जिन छात्रों की विज्ञान में रुचि होती है, वे विज्ञान के पुस्तकें पढ़कर तथा जिन्हे इतिहास में, वे इतिहास की पुस्तकें पढ़कर अपने ज्ञान में

प्रवृत्ति के अनुसार परिनिरीक्षण सम्पूर्ण विद्यालय उनके संचालन, प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाली समस्याओं के समाधान आदि से सम्बंधित है।

2 परम्परागत निरीक्षण अल्प कालीन होता है। जब की परिनिरीक्षक दिन प्रतिदिन के कार्यों की देखभाल से सम्बंध व्यक्तियों की कुशलता के विकास से सम्बंधित है तथा इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए शैक्षिक सुझाव व प्रेरणा प्राप्ती की व्यवस्था रखती है।

3. प्रचलित निरीक्षण विधि आधिकारिक है। जब की परिनिरीक्षक लोक तंत्रीय, सहयोगी एवं प्रेम की भावना से पूर्ण होता है कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें सरकार द्वारा नियुक्त परिनिरीक्षक विद्यालय प्रबंधक, प्र. अ, शिक्षक अन्य व्यक्ति एक दूसरे के सहयोग से विद्यालय के हित केलिए कार्य करते हैं। तथा एक दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करते हैं।

4 परम्परागत निरीक्षण में सहायता एवं उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होता है जब की निरीक्षक मुख्यतः इन्हीं दोनों तत्वों पर

आधारित है। परम्परागत निरीक्षण में निरीक्षक अपने अधीनस्तों की सहायता देने की अपेक्षा उनकी भूलों की ओर संकेत करता है तथा अपने निर्देशों का पालन करता है। प्रस्तावित भावना में परिनिरीक्षक जब-जब उसके परामर्श व प्रेरणा की आवश्यकता होती है, तब-तब वो अपने साथियों को सहर्ष एवं सहानुभूति पूर्ण ढंग से सहायता देता है। वास्तव में वह स्थिति को सुधारने के लिए स्वयं को भी उत्तरदायी समझता है।

5 परम्परागत निरीक्षण में नेतृत्व का अभाव है। इसमें निरीक्षक अपने अधीनस्तों को किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित नहीं करता है। वरन् उन्हें उस कार्य करने के लिए बाध्य करता है। परिनिरीक्षण सृजनात्मक नेतृत्व पर आधार हित है। इसमें निरीक्षक अपने सहयोगियों को कार्य करने के लिए प्रेरणा एवं पद प्रदर्शन प्रदान करके अग्रसर करता है।

6 परम्परागत निरीक्षण में प्रायः एक ही व्यक्ति पर विद्यालय की सुव्यवस्था का दायित्व रहता है। परन्तु परम्परागत निरीक्षण एक

सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें बहुत से व्यक्तियों प्र॰ अ॰, वरिष्ठ शिक्षक, अन्य शिक्षक तथा प्रबंधक एवं सरकार की ओर से नियुक्त परम्परागत निरीक्षण आदि सभी की प्रयास सम्मिलित है।

7. प्रचलित निरीक्षण औपचारिक व अस्वभाविक होता है। इसके अतिरिक्त यह लादा हुआ होता है। परम्परागत निरीक्षण औपचारिक तथा स्वभाविक होता है तथा यह वास्तविक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है। अर्थात आवश्यकता के अनुसार इसकी माँग उत्पन्न होती है।

16/11/06

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें

एक समय तक जब विद्यालयों को ज्ञान प्रदान करने का केन्द्र माना जाता था। विद्यालयों में केवल अध्ययन पर बल दिया जाता था। अध्ययन के अतिरिक्त खेल कूद आदि क्रियाओं को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था। केवल पाठ्य पुस्तकों को ही शिक्षा का आधार

माना जाता था। परन्तु धीरे-धीरे शिक्षा शास्त्रीयों ने पाठ्यक्रम के अतिरिक्त विषयों को भी महत्व देना आरंभ किया। शिक्षा विशेषज्ञों ने अनुभव किया कि जिन विषयों तथा क्रियाओं को अब तक अतिरिक्त समझा गया है। वे पाठ्यक्रम सहगामी हो सकती है। इसी कारण वर्तमान काल में वाद-विवाद, साहित्यक कार्यक्रम, खेल-कूद आदि को अतिरिक्त क्रियायें न मानकर सहायक माना जाता है। यह क्रियायें छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में सहायक होती हैं। तथा उन्हें भावी जीवन में सफल बनाने के लिए व्यावहारिकता की शिक्षा प्रदान करती हैं।

एच. सी. मैकन ने अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं के विकास के तीन स्तर बताये हैं। प्रथम वह स्तर है जिस समय शिक्षकों तथा प्रशासकों द्वारा इसकी अवहेलना की जाती थी। द्वितीय स्तर वो है जिसमें ~~[illegible]~~ इनका ~~[illegible]~~ खुले आम विरोध किया जाता था। तथा तृतीय स्तर आधुनिक युग का है जिसमें शैक्षिक उद्देश्यों

की प्राप्ती के लिए इनका उपयोग आवश्यक समझा गया। अतः पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं से हमारा तात्पर्य उन क्रियाओं से है जो पाठ्यक्रम के अतिरिक्त होती है। किन्तु बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक तथा महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार की क्रियायें शैक्षिक कार्यक्रमों की पूरक होती है और शैक्षिक कार्यक्रमों के उद्देश्यों की प्राप्ती में सहायक होती है।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के लक्ष्य

1. विद्यालय के सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम एवं विद्यालय की चारित्रिक भावना को उन्नत बनाना।
2. छात्रों को स्वशासन तथा लोकतन्त्रीय प्रक्रियाओं के प्रयोग में बहुमूल्य अनुभव प्रदान करना जिससे वे कुशल लोकतंत्रीय नागरिकता प्राप्त कर सके।
3. विभिन्न वातावरणों से आये बालकों में सहयोग एवं अस्तित्व की भावना का विकास करना तथा उनको भावात्मक रूप से एक बनाना

जिससे राष्ट्रीय भावना के मार्ग को प्रशस्त किया जा सके।

4. विद्यालय एवं सामाजिक पारस्परिक सम्बन्धों को उन्नत बनाना तथा समाज को विद्यालयों के कार्यक्रमों में रुचि लेने के लिए प्रोत्साहन देना।

5. बालकों के सर्वांगीण विकास में योगदान देना।

6. बालकों को अपने अवकाश का सदुपयोग करने के लिए तैयार करना।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की आवश्यकता तथा महत्व

वर्तमान विद्यालयों ने पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को उचित स्थान देना आरंभ कर दिया है।

1. सामाजिक ध्येय की पूर्ति

सामाजिक क्रियाओं का संगठन करने के लिए छात्र एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। इस प्रकार उनमें सहयोग तथा मिलकर कार्य करने की भावना का विकास होता है। विद्यालय में समारोहों का आयोजन करके वे समाज के निकट आते

है और विनम्रता का पाठ स्वतः ही सीखता है। विद्यालय की सामूहिक सफलता के लिए अपनी व्यक्तिगत लाभों को त्यागने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। इस प्रकार इन क्रियाओं द्वारा छात्रों में सामाजिक भावना, त्याग, सहयोग आदि गुणों को सरलता के साथ विकसित किया जा सकता है।

2. किशोरावस्था के लिए

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें किशोरावस्था के लिए अत्यधिक लाभदायक है। हम देखते हैं कि किशोर काल जीवन का सबसे नाजुक काल होता है। इस अवस्था में छात्र की मानसिक दशा अत्यधिक भावुक हो उठती है। अनेक प्रकार के मानसिक विकास उभर पड़ते हैं। यदि इस अवस्था में छात्र को उचित प्रकार से मानसिक भावना को प्रकट करने का अवसर नहीं दिया गया तो भविष्य में उसके बिगड़ने की संभावना होती है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा हम किशोर छात्र के भावुक मन को उचित मार्ग पर ला सकते हैं। आत्म प्रदर्शन की प्रवृत्ति का उपयोग 'वाद-विवाद' तथा

अतिरिक्त शक्ति का प्रयोग (सामूहिक खेलों) को संगठित करके उपयोग किया जा सकता है।

3. पाठ्य विषयों में सहायक

अतिरिक्त क्रियाओं द्वारा पाठ्य विषयों को पढ़ाने से विषय अत्यंत रुचिपूर्ण तथा आकर्षक हो जाता है। बालक खेल-खेल में विषय को समझाते हैं। निबन्ध तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता द्वारा नीरस विषयों को भी रोचक बनाया जा सकता है।

4. चरित्र का विकास :

पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा सामाजिक कुशलता के साथ साथ छात्रों के चरित्र का भी विकास होता है। छात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर समूह के लिए त्याग करना सीखते हैं। सांस्कृतिक खेल कूदों में भाग लेने से उनकी सत्यता, ईमानदारी, न्याय प्रियता की परीक्षा हो जाती है। वे अच्छी बुरी बातों में से उचित बात चुनना सीखते हैं। अपने नेता द्वारा जो आज्ञायें दी जाती हैं उनका वे सहर्ष पालन करते हैं। इस प्रकार आत्मानुशासन की भावना उनमें स्वतः उत्पन्न हो जाती है।

5. नागरिकता की भावना का विकास

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें छात्रों को नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती हैं। स्वशासन द्वारा छात्र प्रजातंत्र की शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस व्यक्ति को मत देना उचित है किसको अनुचित आदि की शिक्षा वे विद्यालय जो

इन क्रियाओं के द्वारा सहज रूप में प्राप्त कर लेते हैं। वे शासन में भाग लेना तथा शासित होने की कला सीखते हैं।

6. **अवकाश के क्षणों का सदुपयोग**

वर्तमान मशीन युग में अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने की कला सीखना परमावश्यक है। मानव के बहुत से कार्य मशीनों द्वारा होने लगे हैं। परिणाम स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त मात्रा में अवकाश मिलता है। यदि छात्रों को अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करना नहीं सिखाया गया तो वे अतिरिक्त समय में गन्दी और बेकार की बातों में अपने को उलझा सकते हैं। पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा उनकी रुचियों में कलात्मकता आ जाती है। भविष्य में भी अपने अवकाश के क्षणों को अच्छी बातों में ही लगाते हैं।

7. **मूल प्रवृत्तियों का शोधन**

प्रत्येक छात्र जन्म से ही कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर आता है। यदि मूल प्रवृत्तियों का शोधन नहीं किया गया तो वे छात्र को गलत मार्ग

पर ले जा सकती है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा छात्रों की मूल प्रवृत्तियों का शोधन सरलता से किया जा सकता है। आत्म प्रदर्शन की प्रवृत्ति के लिए वाद-विवाद, खेल, नाटक, आदि का संगठन किया जाना चाहिए।

8. नेतृत्व की शिक्षा

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें छात्रों को नेतृत्व की शिक्षा प्रदान करती हैं। अधिकांशतः छात्र ही इन क्रियाओं का संचालन करते हैं। इस कारण उन्हें अपने साथियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। परंतु सहयोग हृदय की विशालता और स्वार्थ त्याग बिना नहीं मिलता। इसलिए वे अपने अन्दर इन गुणों का विकास करते हैं। उनके सामने ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आती हैं जब की उन्हें धैर्यशील, सहनशील तथा न्यायप्रिय होना पड़ता है। ये समस्त गुण नेतृत्व के लिए परमावश्यक हैं जिन्हें वे छात्र जीवन की पाठ्यक्रमसहगामी क्रियाओं द्वारा अनायास ही सीख लेते हैं।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संगठन के सिद्धान्त

1. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के संगठन में विभिन्नता के सिद्धान्त को अवश्य अपनाना चाहिए। उनका संगठन इस प्रकार से हो कि प्रत्येक रुचि वाले तथा विभिन्न आयु वाले छात्र भाग ले सकें।

2. इन क्रियाओं में यथा सम्भव अधिक से अधिक छात्र भाग लें।

3. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को धीरे-धीरे लागू किया जाय।

4. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की भी समय तालिका बनाया जाय।

5. प्रत्येक क्रिया का उत्तरदायी एक शिक्षक हो जो भली प्रकार से निरीक्षण आदि करे।

6. अध्यापक इन क्रियाओं में छात्र को स्वशासन प्रदान करें। अध्यापक केवल मार्ग दर्शक ही रहे।

7. शिक्षकों की इन क्रियाओं को उत्तरदायित्व योग्यता

तथा रुचि को ध्यान में रखते हुए दिया जाय।

8. क्रियायें जहाँ तक हो सके आध्यात्मिक तथा नैतिक स्तर को ऊपर उठाने वाली हो।

9. क्रियायें साधन हो न की साध्य।

10. संगठन करते समय छात्रों की आयु तथा मानसिक अवस्था का ध्यान रखा जायें।

27/1/06

27/11/06

शिक्षक अभिभावक संघ (समिति)

शिक्षक अभिभावक सहयोग की आवश्यकता

बालक का पालन पोषण परिवार में होता है। इसके विकास में परिवार का भारी हाथ रहता है। यदि विद्यालय के कार्य में परिवार सहयोग न दे तो उसका विकास ठीक प्रकार न हो सकेगा। बालक के शारीरिक, मानसिक विकास में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है। बालक के माँ-बाप प्रथम शिक्षक होते हैं जो उसको किसी न किसी रूप में शिक्षा प्रदान करते हैं। बालक विद्यालय में जब प्रवेश करता है तो वह माँ-बाप द्वारा प्रदान किये गये संस्कारों तथा परम्पराओं को साथ लाता है। अतः हम देखते हैं कि बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व जितना अध्यापक पर है, उससे अधिक उसके अभिभावक पर है। छात्र का अधिकांश समय घर पर बीतता है जब कि मुश्किल से चार या पाँच घंटे विद्यालय में व्यतीत करता है। यदि हम छात्रों का सर्वांगीण

विकास चाहते हैं तो हमें उनके अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना होगा। बालक के व्यक्तित्व का निर्माण घर तथा विद्यालय दोनों जगह होता है तथा दोनों का एक ही उद्देश्य है - वो है बालक का सर्वांगीण विकास।

शिक्षक अभिभावक सहयोग का महत्व

1. छात्रों को समझने में सहायक :-

छात्रों के ऊपर घर के वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। वे जिस वातावरण में पलते हैं वैसे ही भाव उनके मस्तिष्क में दृढ़ हो जाते हैं। शिक्षक अभिभावक सहयोग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि अध्यापक अभिभावकों की सहायता से बालकों को भलि प्रकार समझ सकता है। तथा उनके घर के वातावरण को समझकर उनके व्यक्तित्व के विकास में अपना योग प्रदान कर सकता है।

2. विद्यालय के कार्यों को सफल बनाने में सहायता :-

छात्र के सर्वांगीण विकास के लिए तथा विद्यालय के कार्य को सफल बनाने के लिए शिक्षक अभिभावक सहयोग की परम आवश्यकता पड़ती है। गृहकार्य, स्वास्थ्य रक्षा, अनुशासन की समस्या तथा अन्य क्रियाओं को सफल बनाने के लिए अभिभावक का सहयोग लेना अनिवार्य हो जाता है।

3. परस्पर विश्वास की भावना

शिक्षक अभिभावक संपर्क में निकटता आ जाने से दोनों में एक दूसरे के प्रति विश्वास हो जाता है। बालकों के माँ-बाप विद्यालय के प्रत्येक कार्य में उत्साह दिखाते हैं। वे अध्यापक के संपर्क द्वारा अपने बच्चों की कमज़ोरियाँ जानकर के उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

4. अनुशासन स्थापना में सहायक

शिक्षक अभिभावक सहयोग विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने भी सहायक होता है। जब बालकों के माँ-बाप अध्यापकों के साथ सद्व्यवहार करेंगे तथा उनसे समय समय पर

[illegible]

आमंत्रित किया जाय। विद्यालय में समय-समय पर नाटक, संगीत सम्मेलन आदि का आयोजन किया जाय जिसमें छात्रों के अभिभावकों को भी बुलाया जाय।

5. गृहकार्य की शिकायत

जो छात्र गृहकार्य करके नहीं लाते हों उनकी शिकायत अभिभावकों से अवश्य किया जाय। अभिभावकों से अनुरोध किया जाय की वे बालकों को कार्य करने के लिए समय भी प्रदान करें।

~~6. व्यक्तिगत सम्बन्ध~~

6. व्यक्तिगत सम्पर्क

जहाँ तक सम्भव हो सके शिक्षकों को व्यक्तिगत रूप से अभिभावकों से ~~सम्बन्ध~~ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

7. बालकों के साथ सद् व्यवहार

अध्यापकों को छात्रों के साथ सद्

व्यवहार करना चाहिए। अतः अध्यापकों को अपने छात्रों के साथ सदा प्रेम और उदारता का व्यवहार करना चाहिए।

8. अभिभावक दिवस

वर्ष में एक बार अभिभावक दिवस मनाया जाय। इस दिन अभिभावकों को दिखाया जा सकता है कि विद्यालय में वर्ष भर में क्या क्या प्रगति की है। नाटक, कवि सम्मेलन, संगीत प्रतियोगिता आदि कार्यक्रमों का आयोजन इस दिन अवश्य किया जाय। स्काउटिंग, गर्ल्स गाइड्स, रेड क्रोस आदि क्रियाओं का प्रदर्शन भी इस दिन किया जाय। प्र. अ. को चाहिए की अभिभावक दिवस पर छात्रों के माता पिता के सामने विद्यालय की योजनाओं, उसकी समस्याओं तथा आदर्शों का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करें। तथा उनसे सहयोग प्रदान करने के लिए राय माँगे।

9. अभिभावक शिक्षक समिति (संघ) Short Note

शिक्षक अभिभावक सहयोग को सुदृढ़

बनाने के लिए अभिभावक शिक्षक समिति का निर्माण परमआवश्यक है। इस समिति के सदस्य शिक्षक तथा अभिभावक होते हैं। वर्ष में दो तीन बार इसकी बैठकें होना आवश्यक है। समिति के अध्यक्ष अभिभावकों में से ही चुना जाए तो उत्तम रहेगा। प्रत्येक बैठक का अपना कोई विशेष कार्यक्रम हो जो किसी न किसी रूप में विद्यालय से सम्बंधित होना चाहिए। शिक्षकों के पास विद्यालय की उन्नति से सम्बन्धित यदि कुछ विचार हों तो उन्हें अभिभावकों के समक्ष रखा जाय, नहीं तो छात्रों की समस्या, विद्यालय की आर्थिक समस्या, अनुशासन आदि पर विचार विमर्श किया जाय। प्र.अ. को चाहिए की वह स्वयं विद्यालय द्वारा की गयी प्रगति तथा आवश्यकताओं पर अपने विचार स्पष्ट करें। इस प्रकार की बैठकों का सबसे बड़ा लाभ यह होगा की छात्रों के अभिभावक विद्यालय की समस्याओं को भली प्रकार समझ पायेंगे तथा शिक्षक

अभिभावकों के सहयोग द्वारा छात्रों में अनुशासन की भावना भर सकेंगे। विद्यालय और घर एक दूसरे के निकट आ सकेंगे तथा दोनों में विरोध की भावना स्थान न ले पायेगी। य अ सरलता से अभिभावकों के संपर्क में आ सकेगा तथा उसे आवश्यकता अनुसार सहयोग प्राप्त कर सकेगा।

10. विद्यालय को सामुदायिक योजनाओं का केन्द्र बनाया जाय

यदि विद्यालय को समाज की विभिन्न क्रियाओं का केन्द्र बनाया जाय तो उचित है। विद्यालय में प्रौढ़ पाठशालायें खोली जाय। समय-समय पर सामाजिक गोष्ठियों तथा व्याख्यानों का भी आयोजन किया जा सकता है। विद्यालय के छात्रों को समाज सेवा आदि कार्य करने गाँव में भेजना चाहिए।

X———X

अनुशासन

अनुशासन का अर्थ :-

अनुशासन शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में अनुशासन का अर्थ स्कूल द्वारा प्रतिपादित नियमों का पालन करने से है। दूसरे अर्थ में जन साधारण उस विद्यालय का अनुशासन अच्छा समझते हैं जहाँ छात्र अध्यापक की आज्ञा का पालन करते हैं किसी प्रकार की शरारत नहीं करते तथा छात्रावास में भी सब काम शांति से होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम प्रकार का अनुशासन स्कूल के नियमों का पालन करने तक सीमित है। परन्तु अनुशासन का दूसरा रूप ही वास्तविक अनुशासन होता है। जिसे केवल नियमों का पालन तक ही सीमित न रखकर शरीर, मन तथा आत्मा का प्रशिक्षण मानते हैं। दूसरे प्रकार के अनुशासन में

पहले प्रकार का अनुशासन आता है जो कि अत्यंत विस्तृत है ~~जिसका सम्बन्ध~~ केवल पाठशाला तक ही सीमित न होकर छात्र के सम्पूर्ण दैनिक जीवन सम्बन्धित है। इस अर्थ में अनुशासन का तात्पर्य छात्रों को कुछ काल के लिए नियंत्रण में रखना नहीं है वरन् उसकी आत्मा को इस प्रकार की शिक्षण प्रदान करना है कि वे अपने को भावी जीवन में समाज के योग्य आचार निष्ठ वाले सदस्य बना सके।

अनुशासन का अर्थ वास्तव में बुद्धि का परिष्करण है। अनुशासन से बालक को हमें बताना है कि अपने जीवन में उसे कौन सी बातें आचरण में लानी है तथा किनका परित्याग करना है। आत्म नियंत्रण, आत्म संयम की शिक्षा प्रदान करना ही अनुशासन सिखाता है।

बाह्य अनुशासन वास्तव में अनुशासन नहीं है। बाह्य अनुशासन की स्थापना डंडे की भय पर कर सकते हैं। पर वो अनुशासन

स्थायी नहीं होता। वास्तविक अनुशासन तो आंतरिक अनुशासन है। हम देखते हैं कि अनुशासन का आधार भय नहीं है वरन् एक प्रकार का आचरण है जिसे बालक अपने आत्मा से प्रेरित होकर करता है। प्रो. ए. डी. मूलर के अनुसार "अनुशासन का वास्तविक अर्थ छात्रों को प्रजातंत्रात्मक जीवन के लिए तैयार करना है"। टी. पी. नन का मत है "अनुशासन का अर्थ – अपने आवेगों और शक्तियों को उस व्यवस्था का अधीन करना है, जो अराजकता का अंत करती है तथा जो अकुशलता, अपव्यय, के स्थान पर कुशलता, मितव्ययता की स्थापना करती है।"

30/1/06

विद्यालय में अनुशासन का महत्व

विद्यालय प्रबन्ध को उचित रूप से चलाने के लिए अनुशासन का अत्यधिक महत्व है। विद्यालय की उन्नती तथा अवनती दोनों ही अनुशासन पर निर्भर है। जिन विद्यालयों में अनुशासन का अभाव होता है

वहाँ के समस्त गतिविधियों में अव्यवस्था तथा असफलता दिखाई देती है। अध्यापकों को छात्र सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते उन्हें कह कहकर अपमानित करते हैं। दृढ़ अनुशासन के अभाव में छात्र और अध्यापकों के पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। परिणाम स्वरूप सहयोग के अभाव में स्कूल का कोई कार्य ठीक प्रकार से नहीं हो पाता।

विद्यालय समाज का लघु रूप है।
विद्यालय से ही छात्र बहुत कुछ आदत आचरण में लाते हैं। यदि विद्यालय में उन्हें उचित अनुशासन में रखा जाएगा तथा उनकी कुप्रवृत्तियों को दमन कर सद् ~~प्रवृत्तियों~~ प्रवृत्तियों का विकास करने में योग दिया जाएगा। तो वे समाज के योग्य सदस्य होकर राष्ट्र निर्माण में भी योग दे सकेंगे।

अनुशासन द्वारा छात्र अपनी अन्दर छुपी शक्तियों को पहचानकर इनको उचित मार्ग में लगा सकते हैं। इस कारण प्र. अ और

अध्यापकों को दोनों केलिए! यह आवश्यक हो जाता है कि वे छात्रों में इस प्रकार की अनुशासन की भावना उत्पन्न करें। छात्र अपने भिन्नुवंगा आदि को त्यागकर (अपनी हानिकारक वृत्तियों को नियंत्रित कर अपनी समस्त शक्तियों का उचित प्रयोग कर सके)। जिससे समाज और राष्ट्र के भलाई हो।

विद्यालय में अनुशासन साधना के सिद्धान्त

1. (अनुशासन का आधार विश्वास तथा सद्भावना हो) क्योंकि अथवा संशय पर आधारित अनुशासन क्षणिक होता है। अच्छे अनुशासन की स्थापना केलिए विद्यालय अधिकारियों - प्र. अ, शिक्षक वर्ग आदि तथा बालकों के बीच पारस्परिक प्रेम होना चाहिए। प्रेम विश्वास को उत्पन्न करता है तथा उत्तम अनुशासन की नींव को दृढ़ बनाता है।

2. (उत्तम अनुशासन सहयोग पर आधारित होना चाहिए) प्र. अ. एवं अध्यापकों, अध्यापकों एवं छात्रों अध्यापकों एवं अभिभावकों तथा छात्रों एवं छात्रों के बीच सहयोग होना परम आवश्यक है।

3. अनुशासन को स्थापित करने के लिए दण्ड का प्रयोग न किया जाय। यदि अपने दुष्प्रवृत्तियों को कोई किसी प्रकार से नहीं छोड़ता है तभी इसके प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव किया जाना चाहिए।

4. विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण को सुन्दर एवं सामंजस्य पूर्ण बनाया जाय। इसका उत्तरदायित्व शिक्षकों, अन्य अधिकारियों, छात्रों, अभिभावकों तथा सम्पूर्ण समाज पर है।

5. विद्यालय में छात्रों एवं अभिभावकों को अपने अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त स्वतंत्रता एवं सुविधायें प्रदान की जाय।

6. विद्यालय में विभिन्न रचनात्मक कार्यों को स्थान दिया जाय। जिससे बालकों को उनकी रुचियों के अनुसार विभिन्न कार्य करने से मानसिक एवं संवेगात्मक सन्तोष मिले। इससे अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न होने की संभावना न रहेगी।

7. अभिभावकों को पारस्परिक जीवन को सुन्दर व सुसमय बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना

चाहिए क्योंकि बालक का अधिकांश समय अपने घर पर ही व्यतीत होता है। यदि वहाँ का जीवन अनुपयुक्त रहे, विद्यालय के सब प्रयासों असफल होने की सम्भावना रहेगी।

8. बालकों को अनुशासन के महत्व के विषय में अवगत कराया जाय। विभिन्न महान पुरुषों के उदाहरणों से इसके विषय में ज्ञान दिया जाय।

केन्द्रच अनुशासन

31/1/06

कक्षा अनुशासन:

कक्षा विद्यालय की एक इकाई होती है। यदि कक्षा में अनुशासन उचित रीति से स्थापित हो जाता है तब सम्पूर्ण विद्यालय में स्वतः अनुशासन की स्थापना हो जाती है। कक्षा में अनुशासन की स्थापना के लिए कुछ सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है।

1. आत्म विश्वास की भावना

(अध्यापक को कक्षा में पूर्ण आत्म विश्वास के साथ प्रवेश करना चाहिए। यदि अध्यापक को अपने पर विश्वास नहीं है तो वो कक्षा को भी नियंत्रण में नहीं रख सकते।)

2. कक्षा में समय पर पहुँचना

(यदि अध्यापक ठीक वक्त पर कक्षा में पहुँच जाता है तब उसके लिए छात्रों को अपने नियंत्रण में करना भी आसान हो जाता है।)

3. पाठ की पूर्ण तैयारी

(कक्षा में प्रवेश करने से पूर्व अध्यापकों को अपना पाठ भलि प्रकार से तैयार करना चाहिए। बिना पाठ तैयार किये पढ़ाने से कक्षा में अनुशासन नहीं होता।)

4. छात्रों के नाम जानना

(कक्षा में अनुशासन स्थापित करने के लिए छात्रों का नाम जानना परम आवश्यक है।

छात्र शरारत करने पर उसे नाम लेकर पुकारना उचित है।

5. प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार

कक्षा अध्यापक को अपने छात्रों से स्नेह तथा प्रेम का व्यवहार करना चाहिए।

6. उचित ढंग से प्रश्न पूछना।

कक्षा में प्रश्न पूछने से छात्र सक्रीय रहते हैं। प्रश्नों को यथा सम्भव समान रूप से वितरित किया जाय।

7. पाठ में रूचि उत्पन्न करना

बिना रूचि के पाठ में अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते। इस कारण अध्यापक को अपना पाठ रोचक बनाने केलिए सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिए।

8. मधुर ध्वनि का प्रयोग

अध्यापक को चाहिए की वो जहाँ तक हो सके मधुर स्वर में प्रश्न पूछे। आवास इतना ऊँची होना भी परम् आवश्यक है जिससे

की प्रत्येक छात्र सुन सके।

9. लिखित कार्य को महत्व देना

कक्षा में लेखन कार्य को महत्व देना परम् आवश्यक है। इसके द्वारा छात्रों को सरलता से सक्रिय रखा जा सकता है।

10. छात्रों की समस्याओं को जानना

अध्यापक को छात्रों की समस्याओं को समझने का प्रयास करना चाहिए।

3/2/06

अनुशासन स्थापित करने के उपाय

उत्तम अनुशासन की नींव विद्यालय के सम्पूर्ण कार्यक्रम में निहित है। यदि विद्यालय में उत्तम अनुशासन स्थापित करना है तो प्र० अ० का परम् कर्तव्य है की विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण को उपयुक्त एवं सामञ्जस्य पूर्ण बनायें। इसके लिए वह विभिन्न साधनों का प्रयोग कर सकता है। अर्थात अनुशासन स्थापित करने के दो ढंग या दो साधन होते हैं।

1. सकारात्मक आह्वान (पुरस्कार)
2. नकारात्मक आह्वान (दण्ड)

I सकारात्मक ढंग अपनाने के लिए विद्यालय के वातावरण को नियंत्रित करना होगा। विद्यालय में उचित वातावरण उत्पन्न करने के लिए निम्न बातों को अपनाना परम् आवश्यक है।

1. संगठित सामूहिक खेल-कूद

किसी विद्यालय में अनुशासन की नींव दृढ़ करने के लिए खेल कूद की उचित व्यवस्था करना परम् आवश्यक है। इसके प्रमुख कारण निम्न हैं।

a. किशोरावस्था में बालक के अन्दर अतिरिक्त शक्ति होती है। खेल कूद की व्यवस्था करके उसे सरलता से एक स्वास्थ्य वर्धक मार्ग में परिचालित किया जा सकता है।

b. जिन विद्यालयों में शाम के वक्त खेलकूद की व्यवस्था रहती है वहाँ छात्र अवकाश में अपना समय खेल कूद में लगाते हैं।

c. जो छात्र खेलकूद पर्याप्त भाग लेते हैं उनका मस्तिष्क भी तीव्र गति से काम करता है।

d. खेल कूद का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इनसे छात्रों के अन्दर सामाजिकता की भावना का उदय होता है।

e. खेल कूद छात्रों में आत्म सम्मान के साथ-साथ आज्ञा पालन, सहयोग और त्याग के गुणों को विकसित करते हैं।

2. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें

इन क्रियाओं के द्वारा छात्रों को स्वस्थ जीवन व्यतीत करने तथा सृजनात्मक शक्तियों को विकसित करने की शिक्षा सरलता से दी जा सकती है। छात्र वाद-विवाद कविता प्रतियोगिता में भाग लेकर सामूहिक जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण लेते हैं। उन्हें आत्म प्रकाशन की भावना इन क्रियाओं द्वारा प्राप्त होता है जिससे उन्हें स्वशासन की भावना का उदय स्वतः होता है।

3. स्वशासन

स्वशासन द्वारा छात्र विद्यालय की कार्यों को अपना समझकर करता है वह अधिकारों का सदुपयोग करना, अपने उत्तरदायित्व को निभाना आदि की शिक्षा स्वयं प्राप्त कर लेता है।

4. विद्यालय में अध्ययन अध्यापन की सुविधायें

जब तक छात्रों को बैठने केलिए पर्याप्त फर्नीचर नहीं होगा तब तक उसका चित्त पढ़ने में एकाग्र नहीं हो सकता। खाली घंटों में तथा अवकाश के समय का उपयोग करने केलिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय हो जहाँ छात्र सुविधानुसार समाचार पत्र और पत्रिकायें आदि पढ़ सकें।

5. नैतिक शिक्षा

छात्रों को उचित मार्ग पर ले जाने केलिए धार्मिक शिक्षा के बजाय नैतिक शिक्षा का सहारा लेना होगा। बालक को

ईमानदार नागरिक बनाने के लिए उनको सद्व्यवहार, न्याय शीलता आदि की शिक्षा प्रदान करना उचित है। इतिहास के उदाहरणों द्वारा अध्यापक अपने छात्रों को बता सकता है कि बुरे कामों का क्या परिणाम होता है तथा अच्छे कामों का क्या।

6. विद्यालय का वातावरण

प्र. अ का कर्तव्य है कि वह विद्यालय के वातावरण को यथाशक्ति शुद्ध रखे। नित्य प्रातःकाल प्रार्थना हो, समय पर बाहर के किसी महान व्यक्ति के भाषण का आयोजन किया जाय तथा सप्ताह में एक या दो बार प्र. अ स्वयं एक संक्षिप्त उपयोगी व्याख्यान दे।

7. नियम

नियम ~~जितने~~ उतने ही हो जितने की सरलता के साथ निभाये जा सकते हैं। नियमों के पालन में प्रमुख बात यह ध्यान देने की है कि प्रत्येक नियम का पालन सभी के लिए अनिवार्य हो।

8 पारितोषिक या पुरस्कार

छात्रों में प्रतियोगिता की भावना जन्मजात होती है। वे अपने को दूसरे से श्रेष्ठतर दिखाने का सदा प्रयत्न करते रहते हैं। पुरस्कार के सहारे हम छात्रों के अन्दर ~~कभी~~ किसी विषय के प्रति रुचि तथा उत्साहन बढ़ा सकते हैं।

9. अध्यापक अभिभावक सहयोग

पाठशाला के कार्य को सुचारु रूप से चलाने तथा दृढ़ अनुशासन स्थापित करने के लिए शिक्षक अभिभावक सहयोग की परम आवश्यकता है। दोनों परस्पर मिलकर छात्रों के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा उनमें प्रवेश करने वाली परस्पर ~~मिलकर~~ बुराईयों को ~~रो~~ ~~रोक~~ रोक सकते हैं।

10. पुरस्कार - लाभ

पुरस्कार प्रदान करने से निम्न लाभ हैं।

1 सद् कार्यों के लिए पुरस्कार देने से छात्रों में प्रतियोगिता की भावना की वृद्धि होती है। वे एक दूसरे से अच्छे काम करने की

चेष्टा करते हैं।

2. पुरस्कार प्राप्त करने की भावना से छात्र नियमों का पालन करने, उत्पन्न तत्परता के साथ करते हैं, इस प्रकार इनकी नैतिक उन्नति होती है।

3. इनके द्वारा बालकों में अपनी शक्तियों में विश्वास उत्पन्न होता है।

4. इनकी प्राप्ती के लिए नियमित एवं कर्तव्य परायण होकर कार्य करना सीखते हैं।

पुरस्कार- दोष

1. पुरस्कार प्राप्त करने वाले छात्र ही परिश्रम करते हैं शेष अपने को अयोग्य समझकर प्रयत्न करना छोड़ते हैं। इस प्रकार का पुरस्कार कुछ थोड़े से ही छात्रों को प्रोत्साहित करता है।

2. अधिकांशतः पुरस्कार छात्र द्वारा स्वयं अर्जित शक्तियों के बजाय ईश्वर प्रदत्त शक्तियों को भी प्रदान किया जाता है।

3. जिन छात्रों को पुरस्कार प्रदान किया जाता है, उनसे वे छात्र जिन्हें पुरस्कार नहीं मिलता जलन करने लगते हैं। कभी-कभी इसके बुरे परिणाम निकलते हैं।

4. पुरस्कार प्रदान करके अच्छा काम कराने से छात्र पुरस्कार के लालच से ही कर्तव्य पालन करता है। प्रत्येक अच्छा कार्य पुरस्कार प्रदान करके नहीं कराया जा सकता।

पुरस्कार प्रदान करने के सिद्धान्त

1. पुरस्कार जहाँ तक हो किसी छात्र को व्यक्तिगत रूप से प्रदान न करके सामूहिक रूप में प्रदान किये जायें। सामूहिक रूप से पुरस्कार प्रदान करने से छात्रों में सहयोग और सद्भावना का विकास होता है।

2. पुरस्कार यथासम्भव छात्रों के आचरण तथा चरित्र पर स्थायी प्रभाव डालने वाला हो।

3. वर्ष भर में छात्र कितना श्रम करता है, उसका आचरण अध्यापकों के प्रति कैसा है,

वह स्कूल नियमित रूप से आता है या नहीं आदि समस्त कार्यों को देखने के बाद ही पुरस्कार प्रदान करना चाहिए।

4. पक्षपात की भावना से प्रेरित होकर जो पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं वे छात्रों के नैतिक आचरणों को भ्रष्ट कर देते हैं। इस कारण पुरस्कार उनको प्रदान किया जाय जो वास्तव में उनके अधिकारी हो।

5. बात-बात पर पुरस्कार ~~प्रदान कर उनकी होड़~~ लगाना भी अनुचित है। इससे पुरस्कार प्रदान करने का महत्व तथा उद्देश्य समाप्त हो जाता है।

6. पुरस्कार प्रदान करते समय छात्रों को यह तथ्य भलि प्रकार से समझा देना चाहिए की उनको जो पुरस्कार प्रदान किये गये हैं वे उनके किन गुणों के कारण प्रदान किये गये हैं। साथ ही अन्य छात्रों को अच्छे गुण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

7. बहुमूल्य पुरस्कार न प्रदान किये जाये। अधिक मूल्य के पुरस्कार छात्रों में लालच की भावना उत्पन्न करते है।

पुरस्कार के प्रकार

पुरस्कार दो भागों में बाँटे जा सकते है, प्रथम वे पुरस्कार जो वस्तु के रूप में प्रदान किये जाते है। उदा :- पुस्तक, पेन आदि। दूसरे प्रकार के पुरस्कारों में प्रशंसा पत्र, प्रमाण पत्र, तथा कक्षा के छात्रों में ऊँचा पद प्रदान करना आदि आते है। विद्यालय में निम्न लिखित आधार पर पुरस्कार प्रदान किये जा सकते है।

1. प्रतिदिन की उपस्थिति।
2. उत्तम आचरण।
3. खेल कूद में भाग लेना।
4. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में भाग लेना।
5. समाज सेवा का आदर्श उपस्थित करना।
6. पाठशाला प्रबन्ध तथा अनुशासन स्थापित करने

में योग देना।

7. अच्छा स्वास्थ्य।

8. लेख तथा कहानी लिखने की रुचि देना पर।

II. नकारात्मक साधन

दण्ड के प्रयोजन

1. प्रतिशोधक :-

(दण्ड इस कारण से प्रदान किया जाये कि छात्र भविष्य में पुनः अपराध न करें। दूसरे शब्दों में दण्ड द्वारा बालक को पुनः अपराध करने से रोका जाता है।) इस प्रकार दण्ड का उद्देश्य अपराधों को रोकना है।

2. प्रतिवादक :-

(दण्ड जो भी प्रदान किये जाय वे अपराधों के अनुकूल होना चाहिए।)

3. सुधारात्मक :-

(दण्ड का तीसरा प्रयोजन छात्रों को यह

बताना है कि नियमों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। नियमों का उल्लंघन करने वाले छात्रों को दण्डित कर देने से दूसरे छात्र नियम भंग करने का साहस नहीं करते।

4. उदाहरणात्मक :-

दण्ड प्रदान करने का चौथा प्रयोग छात्रों के सामने उदाहरण रखना है। यदि छात्र शरारत करता है और उसे उस शरारत के लिए दण्डित किया जाता है, तो दूसरे छात्रों के लिए उस छात्र को दण्डित किया जाना एक उदाहरण हो जाता है।

5. सुधारात्मक प्रयोजन :-

दण्ड का मुख्य प्रयोजन छात्र को सुधारना है। दण्ड द्वारा हम छात्र के अन्दर की बुराईयों को पनपने से रोकते हैं। दण्ड का अंतिम प्रयोजन छात्र को उचित मार्ग पर लाना है जिससे जिसको दण्डित किया गया है, वह दण्ड की पीड़ा से पुनः अपराध न करे तथा अन्य छात्र भी दिये गये दण्ड से शिक्षा लें।

दण्ड के विभिन्न रूप

1. फटकार या झिड़की :- किसी छात्र द्वारा कक्षा में अनुशासन भंग करने पर उसको सबके सामने डाँटने फटकारने से व्यापक प्रभाव पड़ता है। जो उसके आत्म सम्मान चोट पहुँचायी जाती है। परिणाम स्वरूप वो पुनः अनुशासन भंग करने का साहस नहीं करता है।

2. स्कूल के बाद रोकना :-
इस प्रकार का दण्ड उन छात्रों को दिया जाता है जो देर से आते हैं, कक्षा कार्य, तथा गृह कार्य करके नहीं लाते। इस प्रकार के अपराध करने वाले छात्रों को स्कूल के बंद होने के बाद रोका जा सकता है और उन्हें घर उस समय जाने दिया जाय, जब वे दिया हुआ कार्य समाप्त कर ले।

3. जुर्माना :-
अधिकांश विद्यालयों में छात्र के देर से आने पर जुर्माना किया जाता है। जुर्माना करना एक प्रकार का आर्थिक दण्ड है जो

अभिभावकों पर पड़ता है। इस दण्ड को देने का एकमात्र उद्देश्य अभिभावकों को यह बताना है कि उनकी लापरवाही के कारण ही छात्र स्कूल में देर से आता है।

4. **अधिकारों तथा सुविधाओं से वंचित करना :-**

यह दण्ड का प्रभावशाली दण्ड है। छात्र द्वारा अनुशासन भंग करने पर इससे उन समस्त सुविधाओं को छीना जा सकता है जो अन्य छात्रों को प्राप्त हैं। संध्या समय जब समस्त बालक विद्यालय में खेल का आनंद ले रहे हों उस समय अनुशासन भंग करने वाले छात्रों को खेलने से रोका जा सकता है।

5. **नैतिक दण्ड :-**

नैतिक दण्ड से हमारा तात्पर्य छात्र को सबके सामने अपनी भूल स्वीकार कराना से है। किसी पद से उतार देना भी इस प्रकार का दण्ड है। यदि कोई छात्र किसी लड़के की पुस्तक चुरा लेता है ऐसी अवस्था में समस्त कक्षा के सामने खड़ा करके उससे क्षमा याचना करवाया जाय तो संभवतः वो पुनः

किसी की पुस्तक चुराने का साहस न करेगा। इसी प्रकार अनुशासन भंग करने वाले छात्र को कक्षा में सबसे पीछे खड़े करने का भी दण्ड दिया जा सकता है।

6. अतिरिक्त कार्य देना :-

(यदि छात्र गृहकार्य करके नहीं लाता या गृहकार्य करने में लापरवाही प्रदर्शित करता है, ऐसी दशा में गृहकार्य पुनः करने को दिया जाय तथा अतिरिक्त कार्य दण्ड के रूप में प्रदान किया जाय) यह दण्ड का प्रभावशाली रूप है।

7. शारीरिक दण्ड :-

(शारीरिक दण्ड से हमारा तात्पर्य है छात्र द्वारा अनुशासन भंग करने पर शारीरिक कष्ट देना, जिससे छात्र दण्ड की पीडा से भयभीत होकर पुनः अपराध न करे) तथा अन्य छात्र भी उसे पीडित देखकर वैसा अपराध करने का साहस न कर सके।

8. विद्यालय से निष्कासन :-

जब किसी छात्र की उद्दण्डता असीमित हो जाती है तब उसे अन्तिम दण्ड विद्यालय से निकाल देना है। इस प्रकार का दण्ड उन छात्रों के लिए है जिनके किसी प्रकार से भी सुधरने की आशा नहीं होती।

दण्ड के सिद्धान्त :-

1. दण्ड अपराधी तथा अपराध के अनुकूल हो। दण्ड प्रदान करते समय छात्र के मानसिक स्तर तथा स्तर-रुप को सदा ध्यान में रखा जाय।

2. दण्ड क्षतिपूर्ति करने वाला हो। यदि बालक ने डेस्क तोड़ दिया हो तो उससे या तो डेस्क बनवाया जाय या उसपर इतना जुर्माना किया जाय कि डेस्क की कीमत निकल आये।

3. दण्ड सबके लिए अनिवार्य हो। पक्षपात पूर्ण भावना से प्रदान किये गये दण्ड विद्यालय के अनुशासन को आघात लगाते हैं।

4. दण्ड कम से कम प्रदान किया जाय।

5 दण्ड छात्रों में सुधार उत्पन्न करने वाले हों।
6. प्र. अ को अपने पास (दण्ड रजिस्टर) रखना चाहिए। छात्र पर दण्ड देने का क्या प्रभाव पड़ा यह सब दर्ज कर देना चाहिए।

शारीरिक दण्ड के देने के विरोध में तर्क

1. यह प्रणाली अप्रभावशाली तथा अमनोवैज्ञानिक है। इसका अधिक प्रयोग करने से छात्र के मन में ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं।

2. इसके प्रयोग में अंग भंग होने का भय रहता है तथा शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3. इसका अधिक प्रयोग छात्रों को उद्दण्ड, असामाजिक तथा झगड़ालू बनाता है।

4. इससे छात्र ~~बाहर~~ बाह्य रूप आज्ञापालक रहते हैं परन्तु अंदर से विद्रोही हो जाते हैं।

5 इसका प्रभाव शरीर तक ही सीमित है, मन पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता।

6. अध्यापक द्वारा प्रयोग करने से, छात्र अध्यापक सम्बन्ध में कटुता आ जाती है। शारीरिक दण्ड छात्र के मन में प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न करता है।

7. भूल से निरपराध छात्र को शारीरिक दण्ड देने से इसका प्रभाव उल्टा पड़ता है। छात्र स्कूल को घृणा से देखने लगता है।

शारीरिक दण्ड की आवश्यकता

विद्यालय में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ सामने आ जाती हैं, जब बिना शारीरिक दण्ड दिये काम नहीं चलता। कुछ छात्र स्वभाव से ही उद्दण्ड होते हैं, उनके लिए शारीरिक दण्ड आवश्यक हो जाता है। चरित्रहीन छात्रों यदि शारीरिक दण्ड न देकर स्वतंत्रता दे दी जाय तो विद्यालय का वातावरण दूषित हो जाने की सम्भावना रहती है। अपराध करने के तुरंत बाद ही शारीरिक दण्ड देने से अपराध और दण्ड का सम्बन्ध ज्ञात होता है। उपर्युक्त कारणों से शारीरिक दण्ड का हम दुर्भाग्य

त्याग नहीं कर सकते।

शारीरिक दण्ड प्रदान करते समय निम्न बातें ध्यान में रखी जाय -

1. शारीरिक दण्ड गंभीर अपराधों पर ही दिया जाय।
2. अल्पायु के बालकों को शारीरिक दण्ड देना पूर्णतया अनुचित है।
3. शारीरिक दण्ड छात्रों के कोमल अंगो को ध्यान में रखकर दिया जाय।
4. शारीरिक दण्ड प्रदान करते समय छात्रों की व्यक्तिगत मनोवृत्ति तथा स्वास्थ्य को भी ध्यान में रखा जाय।
5. किसी भी छात्र को बिना सोचे-समझे सन्देह पर दण्ड देना पूर्णतया अनुचित है। शारीरिक दंड से पहले सत्यता का पता लगा लेना अच्छा है।
6. अपराध करने का तुरंत बाद ही शारीरिक दण्ड देना उचित है। देर करने से दण्ड का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

7. (शारीरिक दण्ड प्रदान करते समय छात्र को यह बताना आवश्यक है कि उसने क्या अपराध किया है)

अनुशासन हीनता के रूप

हमारे विद्यालयों में अनुशासन हीनता के दो रूप पाये जाते हैं। व्यक्तिगत अनुशासन हीनता, और सामूहिक अनुशासन हीनता।

Essay

X. अनुशासन हीनता के कारण (विद्यालय में)

1. दोषपूर्ण वर्तमान शिक्षा प्रणाली :

(हमारे देश की शिक्षा प्रणाली जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से दूर है। यह छात्रों को साहित्यिक ज्ञान प्रदान करती है। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् छात्र किसी समस्या हल करने में अपने को पूर्णतया असफल पाते हैं) अधिकांश विद्यालय में नैतिक शिक्षा का अभाव होने के कारण छात्रों में चरित्र हीनता की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष है

वार्षिक परीक्षाओं का प्रभाव

२. शिक्षकों का पतन :-

प्राचीन काल में शिक्षकों को जो सम्मान प्राप्त था वो अब धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। छात्र भी उन्हें अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं परिणाम स्वरूप अध्यापकों के मन में अपने कर्तव्यों के प्रति उत्साह नहीं है। कुछ स्कूलों में कम वेतन मिलने के कारण अधिकांश समय उनका ट्यूशन करने में चला जाता है। परिणाम स्वरूप वे विद्यालय के कार्य को भार मानकर करते हैं।

३. आर्थिक समस्यायें

छात्रों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है परन्तु उनको शिक्षा ठीक प्रकार से प्रदान की जा सके, इसलिए अभिभावकों के पास पर्याप्त धन नहीं है। इस प्रकार का असंतोष छात्रों को विद्रोही बना देता है।

निर्धन छात्रों के पास पुस्तकों तथा फीस तक के लिए पैसे नहीं हैं। ये परिस्थितियाँ समाज में विषमता उत्पन्न करती हैं।

4. स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव

स्वतंत्रता संग्राम काल में अनुचित कानूनों को उल्लंघन करने के लिए कहा गया। जब छात्रों में कुछ कानूनों को तोड़ने की आदत विकसित कर दिया गया तब वे सभी प्रकार के कानूनों को उल्लंघन करने की भावना विकसित कर दिया।

5. राजनैतिक पार्टियों का प्रभाव

हमारे देश की राजनैतिक पार्टियाँ चुनावों में जीतने के लिए विद्यार्थियों का दुरुपयोग करते हैं। चुनाव के दिनों में छात्रों द्वारा नारे लगवाये जाते हैं। कभी-कभी परस्पर झगड़ों में भी इनका प्रयोग किया गया है। इन सब बातों का छात्रों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. सामाजिक स्तर का पतन

आज हमारे देश का सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ सिद्धि के लिए बुरे से बुरे कार्य किये जा रहे हैं, छात्र समाज में रहते हैं, वे इसके प्रभाव से कैसे बच सकते हैं। वे भी जीवन के आदर्शों का मजाक उड़ाते हैं, बुरे से बुरे काम बिना संकोच से कर डालते हैं।

7. अध्यापक और छात्रों के सम्बन्ध में कटुता :

विद्यालय में छात्रों की संख्या दिन प्रति-दिन बढ़ जाने से छात्र और अध्यापक के संबंध में कटुता आ गयी है। अध्यापक छात्रों की विशाल जन संख्या से निकट का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते। परिणाम स्वरूप एक दूसरे की समस्याओं को समझने में असुविधा रहती है।

8. उचित निर्देशन का अभाव

छात्र को गलत मार्ग पर जाने से रोकने के लिए उचित निर्देशन का भी अभाव है। बेकार नवयुवकों को अपनी जीविका कमाने के विषय में किसी भी प्रकार का निर्देश नहीं दिया जाता और न इसकी व्यवस्था।

9. आदर्श का अभाव

इस भौतिकवादी युग में साधारण जनता के आदर्श का पतन हो गया है। इस पतन का प्रभाव छात्रों पर भी पड़ा है। जन साधारण में आध्यात्मिकता का अभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

10. विद्यालय की भौतिक परिस्थितियाँ

कक्षाओं का छोटा-छोटा होना, पर्याप्त प्रकाश, शुद्ध वायु, उपयुक्त फर्नीचर के अभाव में छात्रों का दम घुटने लगता है। इस घुटन मुक्ति प्राप्त करने के लिए छात्र कक्षाओं से भाग जाते हैं और अवांछित कार्यों से अपने को लगा देते हैं।

11. छात्रों की समस्याओं की उपेक्षा :

(प्रायः अधिकारी वर्ग छात्रों की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं देते तो वे आन्दोलन और विद्रोह का मार्ग अपनाते हैं।)

अनुशासन हीनता को दूर करने का उपाय

समस्या का हल :-

वास्तव में अनुशासन हीनता देश के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। छात्रों पर ही देश का भविष्य निर्भर है। अनुशासन हीनता को रोकने के लिए हमें ठोस पग उठाने पड़ेंगे। सबसे पहले हमें उन कारणों को दूर करना होगा जिनके कारण देश में अनुशासन हीनता फैली हुई है।

1. अध्यापकों के स्तर को उठाये जाय :-

(अध्यापकों को समाज में ऊँचा स्तर प्रदान करना आवश्यक है। उनके वेतन में वृद्धि की जाय जिससे वे मन लगाकर

छात्रों की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करें।

2. प्रवेश सीमित हो :-

विद्यार्थियों को एक विद्यालय में निश्चित प्रवेश की अनुमति प्रदान की जाय जिससे विद्यालय में छात्रों की भीड़ न बढ़े।

3. छात्र और अध्यापक संपर्क मधुर बनाये जाय :-

अध्यापक को अनुशासन स्थापित करने के लिए अधिकार प्रदान किये जाय। अध्यापक विद्यार्थी संपर्क को दृढ बनाये जाय। दोनों एक दूसरे की समस्याओं को समझे तथा परस्पर सहयोग से कार्य करें।

4. आलोचना कम हो :-

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में यद्यपि दोष हैं, परंतु उसकी प्रत्येक समय आलोचना उचित नहीं। अत्यधिक आलोचना निराशा को जन्म देती हैं, छात्र मन लगाकर पढ़ने

के बजाय अपने भविष्य के विषय में सोचने लगते हैं। शिक्षा को यथासंभव व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया जाय विश्व विद्यालयों में प्रवेश केवल योग्यतम छात्रों को मिले माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के करने केलिए प्रोत्साहित किया जाय। योग्य छात्रों को पढ़ने लिखने की प्रत्येक सुविधाये प्रदान करना भी आवश्यक है।

5. किशोरावस्था का ध्यान :-

किशोरावस्था के छात्रों को समय-समय पर समाज सेवा केलिए प्रोत्साहित किया जाय। उनकी अतिरिक्त शक्ति को निर्माण तथा सृजन में लगाये रखना परम आवश्यक है। उन्हें गाँवों में ले जाकर श्रमदान जैसी सामाजिक क्रियाओं द्वारा अवकाश का सदुपयोग सिखाया जा सकता है। अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे छात्रों की कलात्मक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित करें।

वृद्धि पुस्तकालय द्वारा कर लेते है।

5. निर्धन छात्रों की सहायता

प्रत्येक छात्र पुस्तक नही खरीद सकता। परन्तु पुस्तकालय द्वारा वह पुस्तके प्राप्त करके अपनी ज्ञान की पिपासा को शांत कर सकता है। पुस्तकालय से पाठ्य पुस्तकें भी निर्धन छात्र को विशेष कार्य केलिए प्रदान की जा सकती है।

6. ~~अव~~ अवकाश का सदुपयोग :

पुस्तकालय छात्रों को अवकाश का सदुपयोग करना सिखाता है। ~~खाली~~ खाली घंटो में छात्र इधर उधर घूमने के बजाय पुस्तकालय में बैठकर अपना समय अध्ययन में लगाते है।

7. अध्यापकों के लिए उपयोगी.

पुस्तकालय छात्रों के लिए ही लाभदायक

नहीं हैं वरन् अध्यापक भी पुस्तकालय से लाभ उठाते हैं। अध्यापकों को अपने बौद्धिक विकास के लिए पुस्तकालय से बड़ी सहायता मिलती है। वे अपने विषय की अनेक पुस्तकें पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

8. सामूहिक अध्ययन के दोषों का निवारण.

पुस्तकालय द्वारा सामूहिक अध्ययन के दोषों को दूर किया जा सकता है। कक्षा में छात्रों की अधिक संख्या होने के कारण अध्यापक प्रत्येक छात्र को अधिक समय नहीं दे सकता इस समस्या को हल करने के लिए अध्यापक, छात्रों को किसी विशेष विषय से सम्बन्धित पर्याप्त पुस्तकें पढ़ने के लिए बता सकता है। छात्र इन पुस्तकों को पढ़कर कक्षा में पढ़ाये गये विषय को अपने मस्तिष्क में सरलता के साथ दृढ़ीभूत कर सकते हैं।

9. मौन पाठ का अभ्यास

पुस्तकालय में बैठकर छात्र जोर-जोर से नहीं पढ़ सकते, उन्हें पुस्तक मौन रूप से ही पढ़नी पड़ती है। इस ~~प्रकास~~ प्रकार वे मौन पाठ की आदत डालते हैं।

10. विद्यालय के पश्चात भी शिक्षा

पुस्तकालय छात्रों को अध्ययन का इतना शौकीन बना देता है कि शिक्षा समाप्त करने की पश्चात भी पुस्तकें पढ़ना नहीं छोड़ता हैं। इस प्रकार उनकी शिक्षा का क्रम भंग। नहीं होता।

निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है बाँधना अर्थात क्रम ही विचारों को भाषा के माध्यम से क्रम प्रदान करना किसी निश्चित विषय पर विचारों को सुचिबद्ध करना निबन्ध कहलाता है

निबन्ध के प्रकार ->

① भावात्मक निबन्धों का सम्बन्ध हृदय से है इसमें बुद्धि तत्व के अपेक्षा भाव तत्व की प्रधानता रहती है। इसमें मनोवेगों की प्रबलता रहती है।

2 विचार प्रधान निबन्ध :

इसमें विचारात्मकता का प्राधान्य होता है। इसमें विचारों का तर्कशील, चिन्तनशील तथा विवेचनाशील संयोजन रहता है। दार्शनिक आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक साहित्यिक तथा सामाजिक विषयों पर निबन्ध लिखे जाते है।

3, कथात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर अथवा साहित्यिक सुत्रों पर आधारित होते है। ऐतिहासिक साहित्यिक चरित्रों को छात्र

विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के लिए अधिक से अधिक अवसर होने चाहिए। जिससे वे स्वतन्त्र अभिव्यक्ति सीख सकें।

4 प्रवचन विधि :

इस विधि में शिक्षक का कार्य प्रमुख है उसे मौखिक रूप से क्रमबद्ध प्रवचन द्वारा संपूर्ण निबन्ध कक्षा में प्रस्तुत करना होगा। इस विधि में विद्यार्थियों की कल्पना, तर्क, विचार आदि का विकास नहीं होता। अतः इस विधि का चयन कम से कम किया जाना चाहिए।

(5) स्वाध्याय व मन्त्रणा विधि

स्वाध्याय विधि में शिक्षक, शीर्षक बनाना अपना दायित्व समझता है शेष कार्य विद्यार्थी करता है। मन्त्रणा विधि के शिक्षक केवल पथप्रदर्शक होते हैं। शीर्षक बता कर उससे सम्बन्धित पुस्तकों की सूची बतादेना शिक्षक का कार्य है।

6 अनुकरण व आदर्श विधि :

निबन्ध, कहानी, नाटक आदि को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना चाहिए। भाषा शैली की दृष्टि से श्रेष्ठ और सुन्दर, उनके समक्ष रखे जाय। रुचिकर लगने वाली रचनाओं को छात्र बड़ी गम्भीरता से ग्रहण करता है। इस विधि

का प्रयोग प्रारंभिक कक्षाओं से किया जाता है।

7. वाद विवाद या तर्क विधि :-

वाद विवाद वाले विषयों के हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसी कारण उसका क्षेत्र सीमित है। विषय एक-दो दिन पूर्व बता देना चाहिए और सम्पूर्ण कक्षा को उसके पक्ष और विपक्ष में तैयार होने का आदेश देना चाहिए। फिर इस निश्चित पक्ष में दो दलों में वाद विवाद करने का अवसर देना चाहिए।